मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 35 • वर्ष 4 • अंक 8 • अक्टूबर 2014 • पाँच रुपये • 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

नरेन्द्र मोदी का "स्वच्छ भारत अभियान": जनता को मूर्ख बनाने की नयी नौटंकी 5

हर देश में अमानवीय शोषण-उत्पीड़न और अपमान के शिकार हैं प्रवासी मज़दूर 11

मक्सिम गोर्की की कहानी 'करोड़पति कैसे होते हैं' 14-15

मोदी सरकार के जन-विरोधी क़दमों से ध्यान बँटाने के लिए झूठा प्रचार, फ़र्ज़ी मुद्दे और खोखली नौटंकी जारी

दोनों हाथ मज़दूर को लूटो, बोलो 'श्रमेव जयते'!

सम्पादक मण्डल

मोदी सरकार झूठ और पाखण्ड के भी सारे रिकॉर्ड तोड़ देने पर आमादा है। बेशर्मी से आँखों में धूल झोंकने की नयी कोशिश में अब इसने नारा दिया है 'श्रमेव जयते'। चुनाव से पहले देशी पूँजीपतियों से और सत्ता में आने के बाद दुनिया में घूम-घूमकर विदेशी लुटेरों से नरेन्द्र मोदी यही वादे करते रहे हैं कि उनकी पूँजी लगाने और बेरोकटोक मुनाफ़ा पीटने के रास्ते की सभी बाधाओं को उनकी सरकार दूर करेगी। 'मेक इन इण्डिया' के नारे का मतलब ही है, आइये, हमारे भारत देश के कच्चे माल और सस्ते श्रम को जमकर लूटिये। कोई अड़चन आये, कोई आवाज़ उठाये, तो हमें बताइये – उसे पीट-पाटकर पटरा करने के लिए आपका यह सेवक हमेशा तैयार रहेगा।

दुनियाभर में छायी आर्थिक मन्दी और मुनाफ़े की घटती दर से परेशान पूँजीपतियों की सबसे बड़ी माँग होती है कि मज़दूरों से मनमुआफ़िक काम लेने, मनचाही शर्तों पर उन्हें रखने और निकालने की आज़ादी मिले। तथाकथित "श्रम सुधारों" का एकमात्र मतलब होता है मज़दूरों के काम की शर्तों की हिफ़ाज़त के लिए जो कुछ क़ानूनी बन्दिशें हैं उन्हें भी ढीला कर दिया जाये। उदारीकरण-निजीकरण के पिछले ढाई दशकों के दौरान सारी सरकारें यही करती रही हैं और अब मोदी सरकार मज़दूरों के बचे-खुचे अधिकारों को भी पूरी तरह छीन लेने और उन्हें मालिकों के रहमो-करम पर छोड़ देने का इन्तज़ाम करने में जुट गयी है।

देश का कारपोरेट मीडिया इस कदर बिक चुका है कि इस सफ़ेद झूठ को एक भी सवाल उठाये बिना लगातार परोस रहा है। एक तरफ़ कहा जा रहा है कि अमेरिका और जापान के दौरे में विदेशी कम्पनियों से किये गये वादे को पूरा करने के लिए मोदी ने ये क़दम उठाये हैं और दूसरी तरफ़ बड़ी बेशर्मी से इसे मज़दूरों के हित में बताया जा रहा है। यानी मान लिया गया है कि मज़दूरों के हित पूँजीपतियों के हित के ही मातहत हैं। अब ज़रा देखते हैं कि मज़दूरों की जय कैसे होने वाली है!

'श्रमेव जयते' की घोषणा करते हुए मोदी ने अपने भाषण में कहा कि मज़दूर ही राष्ट्र निर्माता है और उसका सिर ऊँचा होना चाहिए। लेकिन सिर ऊँचा होने के लिए ज़रूरी है कि मेहनत की पूरी मज़दूरी मिले, काम के घण्टे, सुरक्षा, दवा-इलाज, पेंशन आदि क़ानूनों का सख़्ती से पालन हो, कारख़ाने और मज़दूर बस्तियों के नर्क जैसे हालात बदले जायें आदि-आदि। इस बारे में प्रधानमंत्री को कुछ नहीं कहना था। उल्टे मज़दूर को नसीहत दी गयी कि उसे श्रमयोगी बनना चाहिए, यानी 'कर्म किये जा फल की चिन्ता मत कर ऐ इन्सान'! दूसरी तरफ़, 'इंस्पेक्टर राज' ख़त्म करने के नाम पर पूँजीपतियों को इस बात की छूट दे दी गयी है कि वे श्रम क़ानूनों सहित तमाम क़ानूनों का जमकर उल्लंघन करें, कोई उनकी जाँच-पड़ताल, निगरानी करने नहीं जायेगा। उन्हें 'सेल्फ़ सर्टिफ़िकेशन' की सुविधा दी गयी है यानी ख़ुद ही लिखकर दे देना होगा कि उनके यहाँ सबकुछ ठीक चल रहा है, और सरकार उसे मान लेगी। कहा गया है कि नागरिक के रूप में सरकार उन पर भरोसा करती है। अविश्वास के काबिल तो केवल मज़दूर ही हैं जिनकी सभी शिकायतों की अब जाँच नहीं की जायेगी। बल्कि कंप्यूटर से लॉटरी निकाली जायेगी और गाहे-बगाहे किसी फ़ैक्ट्री में कोई जाँच कर ली जायेगी। हर कोई जानता है कि आज भी जाँच का कोई मतलब नहीं होता, इंस्पेक्टर पहले से सूचना देकर फ़ैक्ट्री में आता है, मज़दूरों से मिलने से पहले मालिक-मैनेजर के चैम्बर में जाता है हरे-हरे नोटों से सजी जाँच रिपोर्ट जेब में रखकर चला जाता है। लेकिन जहाँ मज़दूर संगठित और जागरूक होते हैं वहाँ वे सही जाँच के लिए दबाव बना सकते हैं और मालिक के काले कारनामों को एक हद तक उजागर कर सकते हैं। अब इस सम्भावना को भी ख़त्म करके मालिकों की रही-सही चिन्ता को दूर करने का इन्तज़ाम कर दिया गया है।

'मेक इन इण्डिया' और 'स्किल इण्डिया' जैसे नारों की असलियत भी यही है कि पूँजीपतियों को प्रशिक्षित श्रम शक्ति सस्ते दामों पर उपलब्ध कराने का भरोसा दिया जा रहा है। आईटीआई से निकले छात्रों को 'सम्मान' दिलाने की पाखण्डपूर्ण बातें भी इसी का हिस्सा हैं। मारुति सुज़ुकी, मानेसर के जो मज़दूर अपने

(पेज 7 पर जारी)

मोदी सरकार का नया तोहफ़ा : जीवनरक्षक दवाओं के दामों में भारी वृद्धि

जुलाई माह में राष्ट्रीय दवा मूल्य नियंत्रण प्राधिकरण द्वारा 108 दवाओं को मूल्य नियंत्रण के दायरे में लाने वाले फ़ैसले पर मोदी सरकार ने सितम्बर 2014 में रोक लगा दी है। देशी-विदेशी दवा कम्पनियों और उनकी प्रतिनिधि संस्थाओं ने सरकार के फ़ैसले का दिल खोलकर स्वागत किया है। इस फ़ैसले के तुरन्त बाद शेयर मार्केट में दवा कम्पनियों के शेयरों के भाव में चार प्रतिशत उछाल देखने में आया। ग़ौरतलब है कि सरकार का यह फ़ैसला ऐसे समय में आया जब मोदी की अमेरिकी यात्रा का शोर चारों ओर सुनाई दे रहा था। चुनावी नेताओं, खबरिया चैनलों व अखबारों के कलमघसीट पत्रकारों ने इस विषय पर आम जनता का दृष्टिकोण साफ़ करने की बजाय और अधिक उलझाने का ही काम किया।

मोदी सरकार के वर्तमान फ़ैसले से कुछ महत्वपूर्ण जीवनरक्षक दवाओं की कीमतों में भारी बढ़ोतरी हो गयी है। मसलन रक्तचाप व हृदय की दवा कार्डेस प्लेविक्स जो कि 92 से 147 रुपये में उपलब्ध थी, अब 147 से 1615 रुपये के बीच बिक रही है। कुत्ता काटने पर लगाया जाने वाला एंटीरैबीज़ इंजेक्शन कैमरेब जो कि 2670 रुपये में मिलता था अब उसकी कीमत 7000 रुपये तक जा पहुँची है। इसी तरह कैंसर की दवा जैफ्टिनेट ग्लीवेक जो कि 5900 से 8500 रुपये के बीच बिक रही थी, अब 11500 से 1,08,000 के बीच बिक रही है। इस फ़ैसले से दवा कम्पनी सनोफ़ी को 139 करोड़ रुपये, रैनबैक्सी को 38 करोड़ रुपये, ल्यूपिन को 32 करोड़ रुपये, सिपला को 19 करोड़ रुपये का अतिरिक्त मुनाफ़ा हासिल होगा। इसके अलावा सैकड़ों अन्य कम्पनियों को भी इस फ़ैसले से करोड़ों का लाभ मिलेगा।

असल में दवाओं के मूल्य को नियंत्रित करने का क़ानून पहली बार 1970 में बनाया गया। इसके तहत दवा मूल्य नियंत्रण सूची में 370 दवाओं को शामिल किया गया। इसके बाद 1987 में इस सूची को 142 दवाओं तक सीमित कर दिया गया और 1995 में फिर से इसे घटाकर मात्र 75 दवाओं तक समेट कर रख दिया गया। यह कदम मुख्यत: देशी दवा कम्पनियों के कारोबार को बढ़ावा देने के मक़सद से उठाया गया था। यहाँ ग़ौर करने की बात यह है कि वर्ष 1980-85 के बीच दवाओं के दामों में 197 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। दवाओं की बेतहाशा बढ़ती कीमतों और स्वास्थ्य सुविधाओं की खस्ता हालत से कहीं जनता का असंतोष न बढ़ जाये इसलिए कांग्रेस सरकार ने वर्ष 2013 में दवा मूल्य नियंत्रण सूची को 75 से बढ़ाकर 348 दवाओं तक कर दिया। हलाँकि इस कदम को उठाने के पीछे कांग्रेस सरकार का एक अन्य मक़सद अपनी चुनावी गोट सेंकना भी था। बहरहाल यहाँ यह जानना दिलचस्प होगा कि सरकार द्वारा 348 दवाओं का मूल्य नियंत्रण करने के बावजूद दवा कम्पनियों पर कुल बाज़ार मूल्य का मात्र 1.8 प्रतिशत यानी 1290 करोड़ रुपये का ही नियंत्रण लग पाता है। यह ऐसा हुआ मानो हाथी के शरीर से एक मच्छर ख़ून पी जाये! यह अनायास नहीं है कि वर्ष 1947 में जहाँ दवा कम्पनियों का कारोबार 26 करोड़ 26 करोड़ का था वहीं आज 75,690 करोड़ रुपये तक पहुँच गया है। दवा कम्पनियाँ दवाओं के कारोबार के ज़रिये किस कदर बेतहाशा मुनाफ़ा कूट रही हैं इसे एकाध उदाहरण से समझा जा सकता है। ब्लड प्रेशर की एक दवा एमलोडिपीन की दस गोलियों को बनाने का खर्च मात्र 1 रुपये है जबकि सराकार ने उसके लिए न्यूनतम मूल्य 30 रुपये निर्धारित किया है! अगर बुखार उतारने वाली दवाओं का ही बाज़ार देख लिया जाये तो मालूम पड़ता है कि उसका 80 प्रतिशत से ज़्यादा हिस्सा नियंत्रण से मुक्त है। ऐसे अनेकों उदाहरण मौजूद हैं जो यह साबित करते हैं कि मूल्य नियंत्रण की राजनीति तो महज़ एक ढकोसला है जो जनता को भ्रमित करने मक़सद से की किया जाता है। पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी की

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

मजदूर एकता ज़िन्दाबाद

यह बात आज हम लोग शायद न मान पाये मगर सच यही है कि लूट,खसोट व मुनाफे पर टिकी इस पूँजी की व्यवस्था में उम्रदराज लोगों को कोई इस्तेमाल नहीं है। और पूँजी की व्यवस्था का यह नियम होता है कि जो माल(क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था में हर व्यक्ति या रिश्ते-नाते सब माल के ही रूप होते है) उपयोग लायक न हो उसे कचरा पेटी में डाल दो। हम अपने आस-पास के माहौल से दिन-प्रतिदिन यह देखते होगे कि फलाने के माँ-बाप को कोई गिलास पानी देने वाला भी नहीं जबकि उनके चार-चार लड़के है। फलाने के कोई औलाद नहीं और वो इतने गरीब है कि उनका बुढ़ापा जैसे-तैसे घिसट-घिसट कर ही कट रहा है। फलाने के लड़के नहीं है मगर लड़की व दामाद ने तीन-तिकड़म कर सम्पत्ती पर कब्जा करके माँ-बाप के सड़क पर ला दिया। तमाम भीख माँगने वाले वे लोग (अब पूरे देश का आंकड़ा तो नहीं पता मगर 2010 में जब देश की राजधानी दिल्ली में कामनवेल्थ गेम हुए थे। तो दिल्ली सरकार ने राजधानी को साफ व स्वच्छ दिखाने के लिए दिल्ली से 60,000 गरीबों, फुटपाथ पर सोनेवालो व भिखारियों) जो अपनी जिन्दगी की गाड़ी चलाने के लिए आत्मसम्मान तक गिरवी रखकर भीख माँगकर जिन्दा रहते है। उन सब की कोई न कोई कहानी होती है। मतलब की पूँजीवादी समाज में अब उनका कोई उपयोग नहीं है। अब सरकार ने तो ऐसे कोई वृद्धालय या अनाथालय खोले नहीं जिसमें भारत के करोड़ो दुखियारे बुजुर्गों का भरण-पोषण हो सके।

तमाम उम्रदराज लोग जिनकी उम्र 50 या 55 साल के ऊपर है। वो इन ऊपर लिखी समस्याओं से परेशान होकर मगर अपने आत्मसम्मान बचकर मेहनत- मज़दूरी करके, जिन्दगी से संघर्ष करके गर्व के साथ इंसान की जिन्दगी जीना पसन्द करते है। वे शहरों का रास्ता देखते और फैक्टिरयों में मेहनत-मज़दूरी करके अपनी जिन्दगी जीना चाहते है। वो आते है शहरों में फैक्टरी इलाकों में चक्कर लगाते है मगर कुछ ही जगहों को छोड़कर अधिकतर जगह उन्हें काम नहीं मिलता और जहाँ काम मिलता भी है वहाँ बहुत कम मज़दूरी पाते है लगातार 12-14 घण्टे ड्यूटी करते है बस जैसे-तैसे जिन्दगी काटते और सामाजिक समस्याओं व बीमारियों से ग्रस्त होकर जल्द ही मर जाते है। ऐसा मत सोचिएगा कि ये समस्याऐं शायद कुछ विशेष लोगों को आती होगी नहीं ये समस्याऐं पूरे मज़दूर वर्ग की है हम सब की है और आने वाला हमारा भविष्य यही है। जब तक यह लूट और खसोट की व्यवस्था बनी रहेगी। तब तक हम सब यूं ही तिल-तिल कर मरते रहेगें। तो क्यों न हम मिलकर एक प्रयास करे संगठित हो और एकजुट होकर खत्म कर दे इस व्यवस्था को और बनाऐ एक बेहतर दुनिया जिसमें एक इंसान, इंसान की तरह जी सके।

– आनन्द, गुड़गाँव

वजीरपुर के मज़दूरों के संघर्ष के बारे में...

मजदूर साथियों, मेरा नाम बाबूराम हैं, मैं गरम मशीन का ओपेरटर हूँ। मैं वजीरपुर इंडस्ट्रियल एरिया में रहता हूँ। साथियों, मैं वजीरपुर इंडस्ट्रियल एरिया के मजदूरों के, हालात के बारे में लिख रहा हूँ। साथियो, यहाँ हाल बहुत बुरा है। यहाँ मजदूरों से 12-12 घण्टे काम करवाया जाता हैं। यहाँ पर कोई भी श्रम क़ानून लागू नहीं हैं। यहाँ के मजदूरों का बहुत बुरा हाल है, मेरे प्यारे मजदूर साथियों सन 2012 में हम सब लोगों ने मिलकर अपने हकों के लिए लड़ने का फैसला लिया। और अपनी हड़ताल के बाद बुधवार की छुट्टी और वेतन में 1000 रुपए की बढ़ोतरी की अपनी मांगें मालिकों से मनवायी। सन 2013 में भी हम सब मजदूर भाइयो ने मिलकर एक बार फिर हड़ताल की और इस बार हमने 1500 रुपए वेतन में बढ़ोतरी और इ.इस.आई की मांगो पर जीत हासिल की। जब सन 2014 में इलाके के मालिकों को सूचित किया गया की उनके वायदे के मुताबिक अगर वह लोग हमारे वेतन में अप्रैल से 1500 रुपए बढ़ा कर नहीं देते हैं तोह हम सभी मजदूर फ़िर से एक बार हड़ताल पर बैठेंगे। उस समय मालिकों ने यह जवाब दिया की वह लोग सैलरी बढ़ा कर नहीं देंगे। हम सभी मजदूर साथियों ने एक महीने तक इंतजार और तब भी मालिकों के रुख में कोई बदलाव नहीं आने के कारण, हम लोगों ने 6 जून 2014 से इलाके में हड़ताल की कोल दी। यह हड़ताल तकरीबन 32 दिन तक चली और सभी गरम रोला फैक्टरियों के मालिकों को नाको चने चबाने पड़े। हम सब मजदूर साथियों की एकता के कारन मालिक और उनके गुंडे भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सके। पुलिस प्रशासन को भी हमारी एकता के सामने गुटने टेकने पड़े। साथियों अपनी इस हड़ताल को हम मजदूरों ने जुझारू रूप से लड़ा और अपनी कई मांगे मनवाई। मेरे प्यारे मजदूर साथियों में इस पत्र को इस आशा के साथ लिख रहा हूँ की आप सभी को अपने मजदूर भाइयों के संघर्ष के बारे में पता चले और आप भी अपनी मजदूर एकता पर गर्व करे।

– बाबूराम, मजदूर, वजीरपुर इंडस्ट्रियल एरिया।

मज़दूर बिगुल यहाँ से प्राप्त करें :

दिल्ली : मज़दूर पाठशाला, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर (योगेश) 09289498250; वज़ीरपुर (सनी) 09873358124; पीरागढ़ी (नवीन) 08750045975; शहीद भगतसिंह लाइब्रेरी, ए ब्लॉक, शाहबाद डेयरी, फ़ोन - 09971158783

गुड़गाँव : (अजय) 09540436262, (राजकुमार) 09919146445

लुधियाना : मज़दूर पुस्तकालय, राजीव गाँधी कालोनी, फ़ोकल प्वाइण्ट थाने के पास, फ़ोन - 09646150249 ● चण्डीगढ़ : (मानव) 09888808188

लखनऊ : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, फ़ोन - 0522-2786782, (सत्यम) 08853093555

गोरखपुर : जनचेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, फ़ोन - 09455920657

इलाहाबाद : (प्रसेन) 08115491369 ● पटना : (विशाल) 09576203525

सिरसा : डॉ. सुखदेव हुन्दल की क्लिनिक, सन्तनगर, फ़ोन - 09813192365

मुम्बई : नारायण, रूम नं. 7, धनलक्ष्मी कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, प्लाट नं. बी-6, सेक्टर 12, खारघर, नवी मुम्बई, फ़ोन - 09619039793

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।
यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीआर्डर के लिए पताः
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरणः Mazdoor Bigul
खाता संख्याः 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यताः (वार्षिक) 70 रुपये (डाकख़र्च सहित);
(आजीवन) 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फ़ोनः 0522-2786782, 8853093555, 9936650658,
ईमेलः bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुकः www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोनः 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - 2000/-

निठारी काण्ड का फैसला : पूँजीवादी व्यवस्था में ग़रीबों–मेहनतकशों को इंसाफ़ मिल ही नहीं सकता

एक बार फिर ''न्याय'' का तराज़ू अमीरों के पक्ष में झुक गया। भारतीय न्यायपालिका ने रईसों के प्रति अपनी पक्षधरता को जाहिर करते हुए एक बार फिर यह साबित कर दिया है कि करोड़ों-करोड़ मेहनतकश जनता के लिए इस न्याय व्यवस्था का कोई मतलब नहीं है, न्यायपालिका की निष्पक्षता की तमाम लच्छेदार बातें महज़ एक भ्रम है और न्यायपालिका अन्य संस्थाओं की ही तरह देशी-विदेशी पूँजी एवं उसके चाटुकारों की सेवा में पूरी तरह सन्नद्ध है।

बीती 24 सितम्बर को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने मोनिन्दर सिंह पंढेर को ''पर्याप्त साक्ष्यों के अभाव'' में रिहा करने का आदेश जारी किया। यह वही उद्योगपति पंढेर है जिसने नोएडा के सेक्टर 31 से सटे निठारी गाँव में ग़रीब मेहनतकशों के मासूम बच्चों की नृशंस हत्या को अंजाम दिया था। वर्ष 2006 में पंढेर के घर के पिछवाड़े के नाले से और आसपास की जमीन की खुदाई के दौरान बच्चों के 19 कंकाल बरामद हुए थे। ज्ञात हो कि वर्ष 2004 से ही निठारी गाँव के ग़रीब मेहनतकशों के 38 बच्चे और आसपास के इलाकों के 98 बच्चे ग़ायब हो चुके थे। बच्चों के परिजन जब पुलिस थाने में बच्चों की गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज़ कराने जाते थे तो पुलिस उन्हें डाँटकर, डरा-धमकाकर, गाली-गलौज करके थाने से भगा देती थी। कई बार गाँव के कुछ लोगों ने बच्चों की गुमशुदगी के मामले में पंढेर पर संदेह भी जताया, लेकिन पंढेर के कुकृत्यों की जाँच करने की बजाय पुलिस इस पूरे मामले में आँख मूँदकर और कान में तेल डालकर बैठी रही।

पंढेर की कोठी के पिछवाड़े से नरकंकालों के बरामद होने के बाद पंढेर सहित उसके नौकर सुरेन्द्र कोली को गिरफ़्तार किया गया। पूछताछ करने पर पता चला कि कोली आसपास के इलाकों से ग़रीब बच्चों को बहला-फुसलाकर पंढेर की कोठी पर लाया करता था जहाँ दोनों मनोरोगी बच्चों से दुष्कर्म करके उनकी हत्या कर देते थे। जाँच के आगे बढ़ने के साथ यह बात भी सामने आयी कि मामला केवल दुष्कर्म और हत्या तक ही सीमित नहीं था। बच्चों के अधूरे कंकालों के मिलने से यह भी स्पष्ट होने लगा कि यह मामला मानव अंगों के व्यापार से भी जुड़ा हुआ था। ग़ौरतलब है कि पंढेर की कोठी के साथ ही नवीन चौधरी नाम के एक डाक्टर का बंगला सटा हुआ था जिसका नाम ग़रीबों के गुर्दे निकालकर बेचने के मामले में पहले ही सामने आ चुका था। हलाँकि सबूतों के अभाव का रोना रोकर उसे बेदाग बरी कर दिया गया था। जाँच के दौरान विलासी धनपशु पंढेर और उसके मनोरोगी नौकर कोली द्वारा बच्चों के माँस को भुनकर खाने और मृत शरीर से यौन संबन्ध बनाने जैसे घिनौने, उबकाई पैदा करने वाले और रोंगटे खड़े कर देने वाले तथ्य भी उजागर हुए। मोनिन्दर पंढेर के कुकर्मों के सामने आने पर गुमशुदा बच्चों के गुस्साये परिजनों ने जब उसके घर पर पथराव किया तो पुलिस ने पूरी तत्परता के साथ क़ानून व्यवस्था को बनाये रखने की दुहाई देकर उन ग़रीबों पर जमकर लाठियाँ बरसाईं।

निठारी काण्ड में पंढेर और कोली की गिरफ़्तारी के बाद दोनों ने ही पुलिस हिरासत में अपने घिनौने कृत्यों को स्वीकार किया। बाद में यह मामला सीबीआई के पास चला गया। सीबीआई ने मामले की गम्भीरता से जाँच करने की बजाय वर्ष 2007 में पंढेर को क्लीन चिट दे दी। इसका मृत बच्चों के परिजनों ने जमकर विरोध किया। अन्य हलकों से भी विरोध के स्वर उठने पर सीबीआई ने नये सिरे से आरोप पत्र में पंढेर पर केवल मानव तस्करी का आरोप लगाया, उसे बलात्कार और हत्या के आरोपों से पूरी तरह बरी कर दिया गया। ग़ौरतलब है कि सीबीआई ने अपने किसी भी आरोप पत्र में पंढेर द्वारा पुलिस हिरासत में अपने कुकृत्यों की स्वीकृति का कोई हवाला नहीं दिया। बहरहाल सीबीआई ने पंढेर के नौकर कोली को 19 बच्चों के बलात्कार व हत्या का दोषी करार दिया, पर पंढेर को बचाने के लिए वह इस कदर गिर गयी कि उसने कहना शुरू कर दिया कि इस पूरे काण्ड में कोली के कुकृत्यों के बारे में पंढेर को कुछ भी नहीं पता था क्योंकि वह अकसर काम के सिलसिले में शहर से बाहर रहता था। बाद में एक मृत बच्चे के परिजन ने जब सीबीआई पर मुख्य आरोपी पंढेर को बचाने का इल्ज़ाम लगाया तब कहीं जाकर अपनी नाक कटने से बचाने के लिए सीबीआई ने पंढेर को दो बच्चों के बलात्कार एवं हत्या के मामलों में दोषी ठहराया। इसी आधार पर वर्ष 2009 में सीबीआई की एक विशेष अदालत ने पंढेर और कोली को मौत की सज़ा सुनाई।

अदालत के इस फैसले के ख़िलाफ़ पंढेर ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अपील दाखिल की। उच्च न्यायालय ने पंढेर को मौत की सज़ा के फैसले से बरी कर दिया जबकि नौकर कोली की सज़ा बरकरार रखी गयी। यह अनायास नहीं है कि उच्च न्यायालय में सुनवाई के दौरान नोएडा के पुलिस अधिकारियों (सब-इंस्पेक्टर से लेकर सर्किल ऑफिसर तक) पर लाखों रुपयों की बरसात की गयी। उनके लिए पंढेर ने दावतें सज़ायीं। उच्च न्यायालय में सुनवाई के दौरान पंढेर ने अपने इन ''वफ़ादार और पालतू'' पुलिस अधिकारियों की इलाहाबाद की यात्राओं का विशेष रूप से एसी फर्स्ट क्लास में प्रबन्ध करवाया। नोएडा के जिस थाने में पुलिस हिरासत के दौरान पंढेर ने अपने कुकृत्यों को कबूला था, वहाँ केस से सम्बन्धित सभी कागज़ों को नष्ट कर दिया गया। बहरहाल इस पूरे घटनाक्रम के बाद वर्ष 2011 में उच्चतम न्यायालय ने पंढेर के नौकर कोली की मौत की सज़ा को बरकरार रखा। राष्ट्रपति द्वारा उसकी दया याचिका ख़ारिज हो जानें के बाद फिलहाल 28 अक्टूबर को उसकी फाँसी की तारीख निश्चित की गयी है। हलाँकि सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि दिल दहलाने वाले इस बर्बर काण्ड को अंजाम देने वाले मास्टरमाइंड पंढेर को पर्याप्त सबूतों के अभाव की लफ्फाजी करते हुए बाइज्जत बरी कर दिया गया है। यह है भारतीय न्यायपालिका का असली चेहरा।

निठारी काण्ड के बाद वर्ष 2006-2014 तक के इस पूरे घटनाक्रम ने मुख्यत: तीन बातों को स्पष्ट कर दिया है। पहला, ग़रीब मेहनतकशों के मासूम बच्चों के जीवन और उनकी सुरक्षा का इस मुनाफ़ाखोर पूँजीवादी व्यवस्था में कोई मोल नहीं है। आज बहुत बड़े पैमाने पर ग़रीबों के बच्चों को अगवा कर उनकी तस्करी से भारी मुनाफ़ा कमाया जा रहा है। अवैध बाल तस्करी के तहत बच्चों को भीख माँगने, घरेलू मज़दूरों के रूप में खटाने एवं यौन व्यापार में झोंकने का काम किया जा रहा है। घरेलू मज़दूरों के रूप में बच्चों को खटाकर और उनके यौन शोषण से होने वाले व्यापार से हर साल 21 लाख करोड़ रुपये का मुनाफ़ा कमाया जा रहा है जो देश के सकल घरेलू उत्पाद का पाँचवा हिस्सा है। देश में हर साल करीब एक लाख लड़कियाँ अगवा कर ली जाती हैं। अगर वर्ष 2013-14 की ही बात कर ली जाये तो कम से कम 67000 बच्चे लापता हुए थे जिनमें से 45 प्रतिशत नाबालिकों को यौन व्यापार में धकेल दिया गया था। यह स्पष्ट है कि इन तमाम अपराधों का शिकार ग़रीब पृष्ठभूमि से आने वाले मासूम बच्चे बनते हैं जिनकी हिफ़ाजत की जिम्मेदारी न तो पुलिस और न ही शासन-प्रशासन लेता है।

दूसरी बार जो निठारी काण्ड के उजागर होने के आठ वर्षों के घटनाक्रम के दौरान साबित हुई वह थी पूँजीवादी जनवाद की तमाम संस्थाओं का घोर-जनविरोधी और संवेदनहीन चरित्र। पुलिस, सीबीआई, शासन-प्रशासन से लेकर न्यायपालिका धनिकों की सेवा में मुस्तैदी से लगी हुई है। इनका कोई भी हिस्सा आज जनता के सरोकारों और संवेदनाओं के साथ खड़ा नहीं है। असल में इन तमाम संस्थाओं से आम मेहनतकश जनता के हित में न्याय की उम्मीद करना महज़ एक ख़ामख़्याली है। वर्ग समाज में हर संस्था का वर्ग चरित्र होता है। पूँजीवादी व्यवस्था में इन तमाम संस्थाओं का काम मूलत: और मुख्यत: पूँजी की सेवा करते हुए ''न्याय'', ''निष्पक्षता'', ''समानता और जनवाद'' जैसी शब्दावलियों का इस्तेमाल करके मेहनतकश जनता के बीच भ्रम पैदा करना है। हमें खुद को इस भ्रमजाल से मुक्त करना होगा।

तीसरी बात, निठारी काण्ड इस पूँजीवादी व्यवस्था की पतनशीलता को उजागर करने वाली कोई आम घटना नहीं बल्कि एक प्रातिनिधिक घटना थी। पूँजीवाद में मौजूद बर्बरता और अमानवीयता की आम तस्वीरों से तो हम रोज़-ब-रोज़ रूबरू होते हैं। निठारी काण्ड ने साबित कर दिया कि पूँजीवाद आज जिस पतनशील दौर में प्रवेश कर चुका है वहाँ चरम विलासिता में डूबा हुआ नव-धनिकों का एक ऐसा तबका पैदा हो गया है जो मनुष्य होने की सारी बुनियादी शर्तों को खो चुका है। यह तबका अपने पाशविक सनकों को पूरा करने के लिए किसी भी हद तक गिर सकता है। इस कुलीन वर्ग को न तो पुलिस का भय है और न ही क़ानून-व्यवस्था का। ये नव-धनिकों की जमातें मज़दूरों-मेहनतकशों के श्रम को लूटकर भारी अधिशेष निचोड़कर अपने बचे हुए वक़्त में अपनी विलासिता की सनकों को पूरा करने के नयी-नयी तरकीबों को आजमाने के लिए लालायित है। बहरहाल यह बात तो उतनी ही सच है कि पतित पूँजीवादी संस्कृति और उसकी नैतिक सडाँध की तमाम अभिव्यक्तियाँ पूँजीवादी व्यवस्था के बने रहने तक सामने आती रहेंगी। इसका अन्त तो पूँजीवादी व्यवस्था के ख़ात्मे के साथ ही संभव है।

श्वेता

वो कहते हैं

1. वो कहते हैं
तुम घर से बाहर निकलते हो
तो गंदे लगते हो
पर वो यह नहीं जानते
कि इन्हीं गंदे लोगों ने
पूरी दुनिया में सफाई कायम की है,
पर वो कहते हैं
तुम कुछ नहीं जानते।

2. वो कहते हैं
तुम्हारे बच्चे स्कूल नहीं जाते
क्योंकि तुम अपने बच्चों से भीख मँगवाते हो
नहीं जानते हैं वो
हमारे बच्चों का स्कूल न जाने का कारण
और .... न ही जानते हैं उनके भीख माँगने की वजह
पर वो कहते हैं
तुम कुछ नहीं जानते।

3. वो कहते हैं
तुम अपनी सारी कमाई दारू में उड़ाते हो
और फिर दर-बदर की ठोकरे खाते हो
पर वो यह नहीं जानते
हमारे दारू पीने की वजह क्या है
सिर्फ शौक या फिर कुछ और
पर वो कहते हैं
तुम कुछ नहीं जानते

4. वो कहते हैं
राम, कृष्ण, अल्लाह, मसीह की पूजा करो
- अपने धर्म की सेवा करो
तो तुम्हारी जिन्दगी बदलेगी
और नहीं बदली
तो यह तुम्हारे पिछले जन्म के कर्मो का फल है
शायद वो यह नहीं जानते
राम कृष्ण अल्लाह मसीह की पूजा कर-कर के ही
हमारा ये हाल है
पर वो कहते हैं
तुम कुछ नहीं जानते

5. वो कहते हैं
तुम ऐसे ही रहना चाहते हो
इसलिए बदलते नहीं
पर वो यह नहीं जानते
हम चाहे तो पूरी दुनिया बदलकर
सब अपनी मुट्ठी में कर सकते हैं
फिर वो कहते हैं
तुम कुछ नहीं जानते

6. वो कहते हैं
तुम समाज नहीं बदल सकते
क्योंकि... तुममे दम नहीं
पर वो यह नहीं जानते
सुई से लेकर हवाई जहाज बनाने वाले हम,
दुनिया बनाने वाले हम
चाहे तो सबकुछ कर सकते हैं
पर वो कहते हैं
तुम कुछ नहीं जानते।

– भारत
सूरज पाक (बादली इण्डस्ट्रियल एरिया)

पंजाब सरकार के फासीवादी काले क़ानून को रद्द करवाने के लिए क्षेत्रीय स्तर पर तीन विशाल रैलियाँ

पंजाब सरकार का बनाया काला क़ानून 'पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुक्सान रोकथाम) क़ानून-2014' रद्द करवाने के लिए पंजाब के करीब चालीस मज़दूर, किसान, मुलाजिम, छात्र-नौजवान **जनसंगठनों द्वारा गठित 'काला क़ानून विरोधी संयुक्त मोर्चा, पंजाब'** द्वारा संघर्ष तेज़ करते हुए पंजाब में तीन क्षेत्रीय स्तर की विशाल रैलियाँ की गयीं। 29 सितम्बर को माझा क्षेत्र की रैली अमृतसर के कम्पनी बाग में, 20 सितम्बर को दोआबा क्षेत्र की रैली जालन्धर के देशभगत यादगार हाल में और मालवा क्षेत्र की रैली बरनाला में दाना मण्डी में हुई। तीनों रैलियों में विशाल संख्या में जुटे लोगों ने पंजाब सरकार के खिलाफ़ रोषपूर्ण आवाज़ बुलन्द करते हुए यह काला क़ानून रद्द करने की माँग की।

इन विशाल रैलियों को सम्बोधित करते हुए जनसंगठनों के प्रतिनिधियों ने कहा कि इस क़ानून के ज़रिए सरकार अपने हकों के लिए और सच्चाई के पक्ष में आवाज़ उठाने वालों को जेल और जुर्माने की सख़्त सज़ाएँ देने की तैयारी कर रही है। रैली, धरना, प्रदर्शन, हड़ताल, आदि के दौरान अगज़नी, तोड़फोड़ जैसी कार्रवाइयाँ हक़ और इंसाफ़ के लिए संघर्ष करने वाले जनसंगठन नहीं बल्कि सरकारों और पूँजीपतियों द्वारा पुलिस व गुण्डों के ज़रिए जनसंघर्षों को बदनाम करने के लिए की जाती हैं। पंजाब सरकार अब इस क़ानून के ज़रिए संघर्ष करने वाले लोगों को 5 वर्ष तक की जेल, 3 लाख रुपये तक का जुर्माना और नुकसान भरपाई की सख़्त सज़ाएँ देने की तैयारी कर चुकी है। हड़ताल को अप्रत्यक्ष रूप में गैरक़ानूनी बना दिया गया है। वक्ताओं ने कहा कि पहले भी हुक्मरानों का जनता पर ज़ोर-ज़ुल्म कम नहीं था, अब यह और भी बढ़ता जा रहा है। उदारीकरण, निजीकरण, भूमण्डलीकरण की नीतियों के चलते आज मज़दूरों, किसानों आदि मेहनतकश वर्गों की हालत बहुत ख़राब हो चुकी है। गरीबी, बेरोज़गारी तेज़ी से बढ़ी है। विश्वव्यापी आर्थिक संकट की चपेट में भारत भी आया हुआ है और भारत के हुक्मरान आर्थिक संकट का बोझ जनता पर ही डाल रहे हैं। चारों ओर जनता में भारी रोष है और जनान्दोलनों का सिलसिला बढ़ता ही जा रहा है। लोगों को धर्म-जाति के नाम पर बाँटने की कोशिशें तो तेज़ हो ही चुकी हैं और साथ ही हुक्मरान अपने दमनकारी औज़ारों को भी तीखा करते जा रहे हैं। वक्ताओं ने कहा कि यह काला क़ानून हुक्मरानों की इन दमनकारी साज़िशों का ही अंग है।

पंजाब सरकार सन् 2010 में भी दो काले क़ानून लेकर आयी थी। जनान्दोलन के दबाव में सरकार को दोनों काले क़ानून वापस लेने के लिए मजबूर होना पड़ा था। रैलियों के दौरान वक्ताओं ने ऐलान किया कि इस बार भी पंजाब सरकार को लोगों के आवाज़ उठाने, एकजुट होने, संघर्ष करने के जनवादी अधिकार छीनने के नापाक इरादों में कामयाब नहीं होने दिया जायेगा।

'काला क़ानून विरोधी संयुक्त मोर्चा, पंजाब' के नेतृत्व में पिछले 11 अगस्त को भी पंजाब के सभी ज़िलों में ज़ोरदार धरने-प्रदर्शन हुए थे। क्षेत्रीय स्तर की इन रैलियों के दौरान जनसंगठनों ने ऐलान किया कि अगर पंजाब सरकार यह काला क़ानून रद्द नहीं करती तो संघर्ष और तीखा किया जायेगा।

काले क़ानून के ख़िलाफ़ रैली में औद्योगिक मज़दूरों की विशाल भागीदारी

लुधियाना के औद्योगिक मज़दूरों ने पंजाब सरकार द्वारा बनाये काले क़ानून 'पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुक्सान रोकथाम) क़ानून-2014' के खिलाफ़ एक अक्टूबर को बरनाला शहर में हुई विशाल रैली में बड़ी संख्या में भागीदारी की। इसकी तैयारी के लिए टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, पंजाब व कारखाना मज़दूर यूनियन, पंजाब द्वारा लुधियाना की मज़दूर आबादी में दो सप्ताह तक सघन प्रचार अभियान चलाया गया था। बड़ी संख्या में पर्चा वितरित किया गया। घर-घर प्रचार, नुक्कड़ सभाएँ, मज़दूरों के रिहायशी लॉजों (बेहड़ों) में मीटिंगों आदि के ज़रिए संगठनों ने मज़दूरों को राज्य सरकार के काले क़ानून के बारे में जागरूक किया और इसके खिलाफ़ एकजुट संघर्ष करने की ज़रूरत के बारे में समझाया। मज़दूरों ने इस अभियान को भारी समर्थन दिया। पहली अक्टूबर को औद्योगिक मज़दूरों का बड़ा काफ़िला लाल झण्डे, बैनर, तख़्तियाँ हाथों में लेकर "काला क़ानून रद्द करो", "पंजाब सरकार मुर्दाबाद", "जनवादी अधिकार बहाल करो" आदि रोषपूर्ण नारे बुलन्द करता हुआ बरनाला रैली में शामिल हुआ।

टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, पंजाब के अध्यक्ष साथी राजविन्दर ने रैली को सम्बोधित करते हुए कहा कि औद्योगिक मज़दूर यह समझ रहे हैं कि यह क़ानून उनके एकजुट संघर्ष करने के अधिकार पर हमला है। उन्होंने कहा कि राज्य सरकार का काला कानून रद्द करवाने लिए औद्योगिक मज़दूर अन्य तबकों के साथ मिलकर ज़ोरदार संघर्ष लड़ेंगे।

मज़दूर नेताओं का मानना है कि देश के पूँजीवादी हुक्मरान सबसे अधिक मज़दूर वर्ग के एकजुट संघर्षों से डरते हैं। मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूर वर्ग सबसे अधिक लूटा-दबाया जा रहा वर्ग है। मज़दूर वर्ग ही पूँजीपति वर्ग की सबसे बड़ी शत्रु शक्ति है। उदारीकरण, निजीकरण, भूमण्डलीकरण की नीतियों का सबसे बड़ा हमला मज़दूर वर्ग पर ही हो रहा है। पूरे देश में बहुत थोड़े मज़दूरों को श्रम क़ानूनों के तहत अधिकार हासिल हो रहे हैं। मज़दूर रोजाना 12-14 घण्टे बेहद कम उजरतों पर हाड़तोड़ मेहनत करने पर मजबूर हैं। ठेकेदारी, पीस रेट व्यवस्था ने मज़दूरों की बेहद बुरी हालत बना दी है। काम के हालात बेहद असुरक्षित है। काम के दौरान बड़े स्तर पर हादसे होते हैं। मज़दूरों की रिहायशी परिस्थितियाँ बहुत बुरी हैं। विश्व पूँजीवादी व्यवस्था आज गम्भीर संकट का शिकार है। भारतीय पूँजीवादी अर्थव्यवस्था भी विश्व पूँजीवादी व्यवस्था का अंग है और इस संकट का शिकार है। संकट का बोझ मज़दूर वर्ग को झेलना पड़ रहा है। आने वाले दिनों में संकट और गम्भीर होगा और मज़दूर वर्ग पर और बोझ लादा जायेगा। मोदी सरकार के आने से मज़दूर अधिकारों पर पहले ही ज़ारी हमला और तेज़ हो गया है। श्रम क़ानूनों में बड़े स्तर पर मज़दूर विरोधी बदलाव किये जा रहे हैं। पूँजीपति हुक्मरान जगह-जगह उठने वाले मज़दूर संघर्षों को बेहद सख़्ती से दबाने की नीति पर चल रहे हैं। पंजाब सरकार द्वारा बनाये गये काले क़ानून का सबसे बड़ा निशाना भी मज़दूर वर्ग ही है।

पंजाब सरकार का यह काला क़ानून रैली, धरना, प्रदर्शन, आदि संघर्ष के रूपों के आगे तो बड़ी रुकावटें खड़ी करता ही है वहीं हड़ताल को अप्रत्यक्ष रूप से गैर-क़ानूनी बना देता है। इस क़ानून के मुताबिक हड़ताल के दौरान मालिक/सरकार को पड़े घाटे की भरपाई हड़ताली मज़दूरों और उनके नेताओं को करनी होगी। इसके साथ ही घाटा डालने के ज़रिए सार्वजनिक या निजी सम्पत्ति को पहुँचाये नुक्सान के "अपराध" में जेल और जुर्माने का सामना भी करना पड़ेगा। हड़ताल होगी तो घाटा तो होगा ही। इस तरह हड़ताल या यहाँ तक कि रोष के तौर पर काम धीमा करना भी गैरक़ानूनी हो जायेगा। हड़ताल मज़दूर वर्ग के लिए संघर्ष का एक बेहद महत्वपूर्ण रूप है। हड़ताल को गैरक़ानूनी बनाने की कार्रवाई और इसके लिए सख्त सज़ाएँ व साथ ही रैली, धरना, प्रदर्शन, जुलूस आदि करने पर नुक्सान के दोष लगाकर जेल, जुर्माने आदि की सख्त सज़ाएँ बताती हैं कि यह क़ानून मज़दूर वर्ग पर कितना बड़ा हमला है। मज़दूर वर्ग को इस हमले के खिलाफ़ अन्य मेहतनकशों के साथ मिलकर सख़्त लड़ाई लड़नी होगी। इसलिए पंजाब सरकार के काले क़ानून के खिलाफ़ टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन व कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में लुधियाना के कारख़ाना मज़दूरों का आगे आना महत्वपूर्ण बात है।

– बिगुल संवाददाता

"आम तौर से पूँजीवाद और ख़ास तौर से साम्राज्यवाद जनवाद को भ्रम बना देता है, हालाँकि पूँजीवाद उसके साथ ही जन साधारण में जनवादी आकांक्षाएँ पैदा करता है, जनवादी संस्थाओं की सृष्टि करता है, जनवाद को अस्वीकृत करने वाले साम्राज्यवाद तथा जनवाद की आकांक्षा करने वाले जन साधारण के बीच विरोध को संगीन बनाता है। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का तख़्ता अत्यन्त "आदर्श" जनवादी परिवर्तनों द्वारा भी नहीं, बल्कि केवल आर्थिक क्रान्ति द्वारा उलटा जा सकता है। लेकिन जो सर्वहारा वर्ग जनवाद के संघर्ष में शिक्षित नहीं है, वह आर्थिक क्रान्ति सम्पन्न करने में असमर्थ है।..."

"...जनवाद की समस्या का मार्क्सवादी हल यह है कि अपना वर्ग संघर्ष चलाने वाला सर्वहारा वर्ग बुर्जुआ वर्ग का तख़्ता उलट देने की तैयारी करने और अपनी विजय सुनिश्चित करने के लिए बुर्जुआ वर्ग के ख़िलाफ़ सभी जनवादी संस्थाओं और आकांक्षाओं का इस्तेमाल करे। ऐसा इस्तेमाल कुछ आसान काम नहीं है। "अर्थवादियों", तोलस्तोयपंथियों इत्यादि को यह बात अकसर उसी तरह "बुर्जुआ" और अवसरवादी विचारों के लिए अक्षम्य रियायत प्रतीत होती है जिस तरह "वित्तीय पूँजी के युग में" राष्ट्रीय आत्मनिर्णय की वकालत प. कीयेव्स्की को बुर्जुआ विचारों के लिए अक्षम्य रियायत प्रतीत होती है। मार्क्सवाद हमें सिखाता है कि मौजूदा, पूँजीवादी समाज की बुर्जुआ वर्ग द्वारा सृजित और विकृत की जाने वाली जनवादी संस्थाओं के इस्तेमाल को तिलांजलि देकर "अवसरवाद से लड़ने" का अर्थ है अवसरवाद के सामने पूर्णत: घुटने टेक देना!"

– लेनिन

('प. कीयेव्स्की (यू. प्याताकोव) को जवाब', 'मज़दूर आन्दोलन में जड़सूत्रवाद और संकीर्णतावाद का विरोध' संकलन)

नरेन्द्र मोदी का "स्वच्छ भारत अभियान": जनता को मूर्ख बनाने की नयी नौटंकी

सरकार बनने के 5 महीनों के भीतर ही "मोदी की हवा" की हवा निकलनी शुरू हो गयी है। मोदी सरकार एक के बाद एक धड़ल्ले से जनविरोधी नीतियों को लागू कर रही है। पहले मज़दूरों के श्रम अधिकारों पर हमला, रेलवे का किराया बढ़ाया जाना, पेट्रोलियम उत्पादों की कीमतों में बढ़ोत्तरी की तैयारी, तमाम सार्वजनिक उपक्रमों के निजीकरण की तैयारी और साथ ही पूँजीपतियों को मुनाफ़ा पीटने की खुली छूट। चुनावों के पहले महँगाई और बेरोज़गारी से त्रस्त जनता के एक हिस्से ने हताशा में मोदी को वोट किया क्योंकि मीडिया और तमाम पूँजीवादी भोंपुओं द्वारा लोगों के कानों में लगातार यह मन्त्र फूँका जा रहा था कि मोदी सरकार जादूगर की तरह सभी समस्याओं का चुटकियों में समाधान कर देगी। लेकिन सरकार बनने के बाद के पाँच महीनों में ही जनता को यह लगने लगा है कि अगर शुरू में ही मोदी सरकार देशी-विदेशी पूँजीपतियों के सामने दुम हिलाते हुए इस कदर लूट और तबाही की नीतियों को लागू कर चुकी है तो आने वाले पाँच वर्षों में क्या होगा? इन्हीं नीतियों के कारण मोदी सरकार हर बीतते दिन के साथ पूँजीपतियों की टट्टू के तौर पर लगातार बेनकाब हो रही है। इस स्थिति से निपटने के लिए मोदी सरकार दिखावटी तमाशे कर रही है। पहले तीर्थयात्राओं के लिए ट्रेनें चलाना, धार्मिक महोत्सवों पर अपने आपको किसी देवी-देवता के भक्त के रूप में पेश करना, नौकरशाही के निचले स्तरों से भ्रष्टाचार को ख़त्म करने की कुछ दिखावटी मुहिमों की शुरुआत करना, आदि और अब महात्मा गाँधी के जन्मदिवस 2 अक्टूबर को शुरू किया गया स्वच्छता अभियान!

इस स्वच्छता अभियान में तमाम नेताओं-नौकरशाहों को भी कहा गया कि एक दिन अपने ऑफिस के गलियारों और उसके आस-पास थोड़ी झाड़ू फेर दें। खुद मोदी ने भी एक दिन सारे मीडिया को बुलाकर सड़क पर थोड़ी झाड़ू हिला दी। हमारे देश का खाता-पीता मध्यवर्ग शायद पूरी दुनिया के सबसे मूर्ख और प्रतिक्रियावादी मध्यवर्गों में गिना जायेगा जिसके पास एक चुनौटी भर भी राजनीतिक चेतना नहीं है। ज़ाहिर है कि इस तमाशे पर खाते-पीते मध्यवर्ग के तमाम लोग लहालोट हो रहे थे। लेकिन अगर हम इस स्वच्छता अभियान की बारीकियों पर निगाह डालें तो इसकी असलियत साफ़ हो जाती है।

सबसे पहली बात तो यह कि इस स्वच्छता अभियान को मोदी ने गाँधी के जन्मदिन पर शुरू किया और कहा कि गाँधी जी का साफ़-सफ़ाई पर बहुत ज़ोर था! गाँधीवादियों के तमाम कुनबे इस पर काफ़ी नाराज़ हुए और उन्होंने शोर मचाया कि नरेन्द्र मोदी संघ के व्यक्ति हैं जिसकी गाँधी की हत्या में सन्दिग्ध भूमिका थी और अब वह बेचारे गाँधीवादियों के एकमात्र प्रतीक को भी उनसे हथिया रहे हैं! कई संसदीय वामपंथियों और उदार वाम बुद्धिजीवियों ने भी गाँधीवादियों के सुर में सुर मिलाया और कहा कि बेचारे महात्मा गाँधी को नरेन्द्र मोदी हड़पने के चक्कर में है! लेकिन सच तो यह है कि अगर नरेन्द्र मोदी गाँधी के प्रतीक को हड़प रहे हैं तो जहाँ नरेन्द्र मोदी की अवसरवादिता पर चर्चा होनी चाहिए वहीं इस बात पर भी चर्चा होनी चाहिए कि गाँधी के प्रतीक में भी कहीं यह सम्भावना तो नहीं है कि साम्प्रदायिक फासीवादी उसे अपने हिसाब से इस्तेमाल करने लायक बना लें? गाँधी एक मानवतावादी थे, यह सच है। लेकिन यह भी सच है कि गाँधी के विचारों में धार्मिक पुनरुत्थानवाद (पीछे की ओर जाने और पुराने के महिमा-मण्डन की प्रवृत्ति) के शक्तिशाली तत्व मौजूद हैं। गाँधी पश्चिमी बुर्जुआ मानवतावाद को ज्यों का त्यों नहीं अपनाते बल्कि उसका हिन्दूकरण भी करते हैं और उसे हिन्दू परम्पराओं के साथ मिश्रित भी करते हैं। जाति के प्रश्न पर गाँधी की सोच और साथ ही दलितों को 'हरिजन' नाम देना और उन्हें सेवा की वस्तु के तौर पर पेश करना उनके मानवतावादी, सुधारवादी धार्मिक पुनरुत्थानवाद के कारण ही था। यही कारण है कि तमाम गाँधीवादी, छद्म गाँधीवादी और अर्ध-गाँधीवादी (जैसे कि अण्णा हज़ारे) दलितों के प्रति इसी प्रकार का दृष्टिकोण रखते हैं। इसलिए मोदी अगर गाँधी के प्रतीक को चुन रहे हैं और उसे लगभग सफलतापूर्वक हड़प रहे हैं, तो इसका कुछ श्रेय स्वयं गाँधी की विचारधारा को भी दिया जाना चाहिए।

दूसरी ग़ौर करने वाली बात यह थी कि इस स्वच्छता अभियान को मोदी ने एक वाल्मीकि कॉलोनी से शुरू किया। इस प्रतीकात्मक क़दम के पीछे भी एक गहरी प्रतिक्रियावादी और पुनरुत्थानवादी सोच काम कर रही है। इसका सीधा अर्थ यह है कि साफ़-सफ़ाई का काम वाल्मीकि समुदाय का नैसर्गिक काम है और यह दिव्य विधान है कि यह कार्य दलित ही करेंगे। भूलना नहीं चाहिए कि गुजरात के मुख्यमंत्री रहते मोदी ने कहा था कि मैला ढोने का काम करने वाले सफाईकर्मियों को यह काम करने में "आध्यात्मिक अनुभव" होता है। मोदी की देखा-देखी तमाम प्रदेशों के भाजपाइयों, पार्षदों, विधायकों और सांसदों ने भी तुरन्त नकल की और अपने-अपने शहर की वाल्मीकि बस्तियों से सफ़ाई अभियान की शुरुआत कर दी। वास्तव में, यह मोदी सरकार और पूरे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के भारतीय समाज के नक्शे से मेल खाता है। संघ की यही तो समझदारी है कि वर्ण व्यवस्था के मुताबिक श्रम का विभाजन होना चाहिए और दलितों को वही कार्य करना चाहिए जो वे पुश्तैनी तौर पर करते रहे हैं। बस सवर्णों द्वारा दलितों पर किये जाने वाले नंगे अत्याचार का वे खुले तौर पर समर्थन नहीं कर सकते हैं; इसलिए वे इस पूरी पदानुक्रम की व्यवस्था को सहज, सामान्य और नैसर्गिक बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

सच्चाई यह है कि अगर देश में कोई स्वच्छता अभियान चलाया जाना चाहिए तो उसकी शुरुआत सफ़ाई कर्मचारियों के जीवन और काम के हालात को बदलने के साथ की जानी चाहिए। सभी जानते हैं कि देश के तमाम हिस्सों में अभी भी दलित जातियों के सफ़ाई कर्मचारी सिर पर मैला ढोने को मजबूर हैं। सभी जानते हैं कि अगर सरकार पूँजी निवेश करे और साफ़-सफ़ाई के कार्य के लिए उन्नत तकनोलॉजी को ले आये तो इसकी कोई ज़रूरत नहीं रहेगी। लेकिन कोई भी सरकार इस काम में निवेश नहीं करती। सभी जानते हैं कि सफ़ाई कर्मचारियों को अभी भी 'मैन-होल' में घुसकर गन्दगी साफ़ करनी पड़ती है। इसके कारण हर वर्ष दर्जनों सफ़ाई कर्मचारियों की डूबकर या दम घुटने से मौत हो जाती है। क्या एक सच्चे सफ़ाई अभियान को सफ़ाई कर्मचारियों की ज़िन्दगी के इन भयंकर हालात को बदलने से शुरुआत नहीं करनी चाहिए? यह भी सभी जानते हैं कि आज भी सरकारी विभागों में सफ़ाई के काम की रिक्तियाँ निकलती हैं तो उनमें आम तौर पर दलित जातियों के लोगों को ही नौकरियाँ दी जाती हैं। इस खुले भेदभाव और जातिवाद पर मोदी सरकार कुछ क्यों नहीं करती? आज भी देश में कुछ पैदा होने वाले कचरे के बड़े हिस्से के लिए पूँजीपतियों का वर्ग ज़िम्मेदार है और साथ ही ज़िम्मेदार है उच्च मध्यवर्ग जो सामानों और वस्तुओं को बरबाद करने में अपनी शान समझता है। पूँजीपति अपने उद्योगों से निकलने वाले कचरे की सफ़ाई और उसके पुनर्चक्रण व संसाधन के लिए उपयुक्त इन्तज़ाम नहीं करते, जिसके कारण सभी औद्योगिक शहरों और मज़दूर बस्तियों के हालात नर्क के जैसे हैं। वहाँ आये दिन बीमारियाँ फैलती हैं, पानी दूषित हो चुका है, कचरा खुले आकाश के नीचे सड़ता रहता है। इन जगहों की सफ़ाई पर सरकारी विभाग व अधिकारी कोई ध्यान नहीं देते। उल्टे शहर के अमीर इलाकों में अमीरज़ादों द्वारा पैदा किये जाने वाले कचरे को भी ग़रीबों की बस्तियों के आस-पास लेकर 'डम्प' कर दिया जाता है। हर शहर के यही हालात हैं। क्या एक सच्चे सफ़ाई अभियान की शुरुआत ग़रीबों को एक साफ़-सुथरी रिहायश मुहैया कराने से नहीं होनी चाहिए? देश के पूँजीपति और खाया-अघाया मध्यवर्ग देश में पैदा होने वाले कचरे के बहुलांश के लिए ज़िम्मेदार है। लेकिन मोदी सरकार गन्दगी की ज़िम्मेदारी आम जनता पर डालने की कोशिश कर रही है, मानो सारी गन्दगी सड़क पर थूकने या सड़क के किनारे पेशाब करने से फैल रही हो। यह सच है कि शोषण, लूट, अशिक्षा, पिछड़ेपन की शिकार आम जनता अपने सांस्कृतिक पिछड़ेपन के कारण परिवेश की सफ़ाई के प्रति सजग नहीं है। लेकिन इसके लिए भी क्या इस देश में आज़ादी के बाद आयी पूरी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था ज़िम्मेदार नहीं है, जिसने इस देश की जनता को आज़ादी के लगभग सात दशकों में भरपेट भोजन, स्तरीय शिक्षा, रोज़गार, चिकित्सा आदि मुहैया नहीं करायी?

मोदी के स्वच्छता अभियान की यही असलियत है। यह एक नौटंकी है जिससे कि जनता को बेवकूफ़ बनाया जा सके, जिसका कि मोदी सरकार के प्रतीकवाद से मोहभंग हो रहा है और जो अब यह समझ रही है कि मोदी सरकार पूँजीपतियों की टुकड़खोर है। वैसे तो हर पूँजीवादी सरकार ही पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी का ही काम करती है, लेकिन पूँजीपतियों के सामने दुम हिलाने और उनके तलवे चाटने में मोदी ने अब तक के सारे कीर्तिमान ध्वस्त कर दिये हैं। अगर पाँच महीने में ही मोदी सरकार की यह हालत है तो फिर आने वाले पाँच सालों में क्या होगा इसका अन्दाज़ा सहज ही लगाया जा सकता है। लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि मोदी सरकार का यह प्रतीकवाद बहुत दिनों तक काम नहीं करने वाला और अन्तत: उसे अपने नंगे रूप में आना ही है और खुले व बर्बर दमन की नीतियों को अपनाना ही है। मोदी अपना दिखावटी स्वच्छता अभियान चलाकर ख़त्म कर लेगा। लेकिन जनता को भी अपने स्वच्छता अभियान की शुरुआत करनी होगी और भारत के नक्शे और फिर दुनिया के नक्शे से पूँजीवाद-रूपी गन्दगी को अपने बलिष्ठ हाथों से साफ़ करने की तैयारी करनी होगी।

– शिशिर

कश्मीर में बाढ़ और भारत में अंधराष्ट्रवाद की आँधी

दशकों से भारतीय बुर्जुआ राज्यसत्ता के दमन-उत्पीड़न और पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित इस्लामिक आतंकवाद का कहर झेल रही जम्मू एवं कश्मीर की अवाम को सितम्बर के महीने में एक नये कि़स्म के कहर का सामना करना पड़ा। सितम्बर के पहले सप्ताह में जम्मू एवं कश्मीर में आये सैलाब के बाद आयी बाढ़ में लगभग 300 लोग जान से हाथ धो बैठे, लाखों लोग बेघर हो गये और ग्रामीण क्षेत्रों मे हज़ारों हेक्टेयर की फसलें तबाह हो गयीं। इस आपदा की भीषणता का अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि इसमें गाँव के गाँव डूब गये और भूस्खलन से कई गाँवों का तो नामोनिशान भी नहीं बचा। श्रीनगर के गली-मुहल्लों में हफ़्तों तक पानी का जमावड़ा लगा रहा। कई दिनों तक लोग अपने घरों की ऊपरी मंजिलों और छतों पर या अस्थायी कैंपों मे भोजन-पानी के अभाव में फँसे रहे। संचार व्यवस्था के पूरी तरह से ठप्प हो जाने की वजह से लाखों लोग कई दिन तक पूरी दुनिया से कटे रहे। जम्मू एवं कश्मीर सरकार के अनुसार इस आपदा में कुल 1 लाख करोड़ रुपये का नुकसान हुआ। सितम्बर के अन्त तक हलाँकि श्रीनगर के अधिकांश इलाकों से पानी का जमावड़ा हट चुका था, परन्तु भोजन तथा पीने के पानी की किल्लत और बीमारी-महामारी का ख़तरा लगातार बना हुआ है। स्थिति सामान्य होने में महीनों लग सकते हैं।

किसी देश के एक हिस्से में इतनी भीषण आपदा आने पर होना तो यह चाहिए कि पूरे देश की आबादी एकजुट होकर प्रभावित क्षेत्र की जनता के दुख-दर्द बाँटते हुए उसे हरसंभव मदद करे। साथ ही ऐसी त्रासदियों के कारणों की पड़ताल और भविष्य में ऐसी आपदाओं को टालने के तरीकों पर गहन विचार-विमर्श होना चाहिए। परन्तु कश्मीर को अपना अभिन्न अंग मानने का दावा करने वाले भारत के हुक्मरानों नें इस भीषण आपदा के बाद जिस तरीके से अंधराष्ट्रवाद की आँधी चलायी वह कश्मीर की जनता के जले पर नमक छिड़कने के समान था। भारतीय सेना ने इस मौके का फ़ायदा उठाते हुए बुर्जुआ मीडिया की मदद से अपनी पीठ ठोकने का एक प्रचार अभियान सा चलाया जिसमें कश्मीर की बाढ़ के बाद वहाँ भारतीय सेना द्वारा चलाये जा रहे राहत एवं बचाव कार्यों का महिमामण्डन करते हुए कश्मीर में भारतीय सेना की मौजूदगी को न्यायोचित ठहराने की कोशिश की गयी। मीडिया ने इस बचाव एवं राहत कार्यों को कुछ इस तरह से प्रस्तुत किया मानो भारतीय सेना राहत और बचाव कार्य करके कश्मीरियों पर एहसान कर रही है। यही नहीं कश्मीरियों को ''पत्थर बरसाने वाले'' एहसानफ़रामोश कौम के रूप में भी चित्रित किया गया। कुछ टेलीविज़न चैनलों पर भारतीय सेना के इस ''नायकत्वपूर्ण'' अभियान को एक ''ऐतिहासिक मोड़बिन्दु'' तक करार दिया गया और यह बताया गया कि इस अभियान से सेना ने कश्मीरियों का दिल जीत लिया और अब उनका भारत से अलगाव कम होगा।

परन्तु कश्मीर की स्थानीय मीडिया में स्थानीय लोगों के हवाले से तथा सोशल मीडिया पर कश्मीरियों की जो राय आयी, उनसे एकदम अलग तस्वीर उभर कर आती है। इस तस्वीर में यह साफ़ दिखता है कि इस आपदा के प्रबंधन, सेना की भूमिका एवं विशेष रूप से भारतीय मीडिया की अतिरंजनापूर्ण कवरेज ने कश्मीरियों के भारत से अलगाव को कम करने की बजाय बढ़ाया ही है। सैन्य बलों ने जिस तरीके से राहत एवं बचाव कार्यों में आम कश्मीरियों की बजाय सैलानियों, नेताओं, नौकरशाहों तथा वीआईपी लोगों को बचाने को प्राथमिकता दी, उससे भी आम कश्मीरियों में असंतोष की भावना पनपी। तमाम आम कश्मीरियों का यह कहना है कि सेना के हेलीकाप्टर उनके छतों के ऊपर से गुज़रे लेकिन उनको गुहार लगाने के बावजूद उन्होंने उन्हें कोई तवज्जो नहीं दी क्योंकि आम कश्मीरियों को बचाना सेना की प्राथमिकता में नहीं था। जहाँ एक ओर भारतीय मीडिया में राहत एवं बचाव कार्यों में सेना की बहादुरी का गौरवगान चल रहा था, वहीं दूसरी ओर कश्मीरियों का कहना था कि आम कश्मीरियों के लिए अधिकांश राहत, बचाव एवं पुनर्वास का काम स्थानीय स्वयंसेवी संस्थाओं ने किया। यंग कश्मीर वालिंटियर एलायंस (वाईकेवीएल) नामक कश्मीरी स्वयंसेवी संस्थाओं के एक समूह ने अपने अध्ययन में बताया है कि इस बाढ़ में 96 फ़ीसदी लोगों को स्थानीय स्वयंसेवकों ने बचाया और बाकी 4 फीसदी लोगों को सेना और राष्ट्रीय आपदा प्रतिक्रिया बल (एनडीआरएफ) ने बचाया। इस संस्था ने अपने अध्ययन में यह भी पाया कि 92.3 फीसदी पुनर्वास केन्द्रों को भोजन सामग्री स्थानीय स्वयंसेवक समुदायों ने पहुँचायी। राहत एवं बचाव कार्यों में नौका, टेंट, खाद्य एवं पेय सामग्री की किल्लत के मद्देनज़र कश्मीरियों का मानना था कि भारत को अन्तरराष्ट्रीय मदद स्वीकार करनी चाहिए। परन्तु भारत सरकार ने इसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न मानते हुए किसी भी प्रकार की अन्तरराष्ट्रीय मदद से साफ़ इन्कार कर दिया जिसकी वजह से भी कश्मीरियों में रोष देखा गया। नौका की किल्लत को देखते हुए स्थानीय स्वयंसेवक दस्तों ने लकड़ी, प्लास्टिक, पानी के खाली टैंक, ट्यूब आदि जो कुछ भी तैर सकता था उसको नौका के रूप में इस्तेमाल करते हुए ज़्यादा से ज़्यादा जान-माल की रक्षा करने का भरसक प्रयास किया। नौकाओं एवं अन्य सामग्रियों की किल्लत के बावजूद भारतीय मीडिया के तमाम पत्रकार सेना की नौकाओं एवं हेलीकाप्टर में बैठकर रिपोर्टिंग करते हुए पाये गये जिससे कश्मीरियों के इस आरोप को बल मिलता है कि भारतीय सेना ने इस मौके का इस्तेमाल अपनी छवि बनाने में किया और भारतीय शासक वर्ग ने इसका इस्तेमाल पूरे देश में अंधराष्ट्रवाद की आँधी चलाने में किया।

कौन ज़िम्मेदार है इस भयंकर आपदा का?

पिछले साल केदारनाथ में आयी तबाही की तरह ही इस भीषण आपदा की शुरुआत भी बादल फटने की घटना से हुई जिसमें बेहद कम समयान्तराल में अत्यधिक वर्षा (सितम्बर के पहले सप्ताह में ही श्रीनगर में 500 मिमी वर्षा हुई जबकि वहाँ की औसत मासिक वर्षा 56.4 मिमी है) होने से नदियों एवं जलाशयों में पानी भर आया और तटबंधों और डूब क्षेत्र को पार करता हुआ रिहायशी इलाकों में फैल गया। हिमालय के समूचे क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में भीषण वर्षा को पर्यावरणविद् जलवायु परिवर्तन की परिघटना से जोड़कर देख रहे हैं जो अंधाधुंध पूँजीवादी विकास की तार्किक परिणति है। इसके अतिरिक्त हिमालय के क्षेत्र में बेतहाशा तरीके

> **कश्मीर में आयी इस आपदा की भीषणता का एक प्रमुख कारण तमाम पर्यावरण नियमों को ताक पर रखकर पिछले कुछ दशकों में झेलम नदी के डूब क्षेत्रों एवं डल, अंचल और वूलर जैसी झीलों के किनारे अंधाधुंध रिहायशी एवं वाणिज्यिक निर्माण कार्य भी रहा। श्रीनगर की प्रसिद्ध डल झील अपने मूल आकार का एक बटा छठा हिस्सा ही रह गयी है।**

से जंगलों की कटाई की वजह से वर्षा का पानी पहाड़ के ढलान पर तेज़ी से नीचे की घाटियों की ओर आता है और बड़े पैमाने पर तबाही मचाता है। साथ ही जंगलों की बेतहाशा कटाई से पिछले कुछ वर्षों में भूस्खलन की घटनाओं में भी जबर्दस्त बढ़ोतरी देखने में आयी है जिसकी वजह से निचले इलाकों में बाढ़ की विभीषिका कई गुना बढ़ जाती है। इसके अलावा कश्मीर में आयी इस आपदा की भीषणता का एक प्रमुख कारण तमाम पर्यावरण नियमों को ताक पर रखकर पिछले कुछ दशकों में झेलम नदी के डूब क्षेत्रों एवं डल, अंचल और वूलर जैसी झीलों के किनारे अंधाधुंध रिहायशी एवं वाणिज्यिक निर्माण कार्य भी रहा। श्रीनगर की प्रसिद्ध डल झील अपने मूल आकार का एक बटा छठा हिस्सा ही रह गयी है। श्रीनगर जैसे शहर के अनियोजित विकास की वजह से जहाँ एक ओर एक दूसरे से जुड़े हुए जलाशयों द्वारा जलनिकासी का प्राकृतिक संरचना तबाह हुई वहीं दूसरी ओर जलनिकासी का वैकल्पिक तरीका नहीं विकसित किया गया जिसकी वजह से श्रीनगर में बाढ़ का पानी लंबे समय तक जमा रहा।

कश्मीर घाटी में अनियंत्रित और और अनियोजित विकास के मद्देनज़र लंबे अरसे से पर्यावरणविद घाटी में इस किस्म की आपदा आने की चेतावनी देते रहे हैं। नियोजित शहरी विकास एवं जलाशयों तथा नहरों की हिफ़ाजत करके श्रीनगर जैसे शहर में इस विभीषिका की भयावहता को कम किया जा सकता था। परन्तु जलाशयों एवं नहरों के किनारे एवं नदियों के डूब क्षेत्र में अंधाधुंध रिहायशी, वाणिज्यिक एवं सरकारी निर्माण कार्य को बेरोकटोक जारी रहने दिया गया। कई नहरों को पाट कर उनपर सड़कें बनायी गयीं जिससे झेलम नदी के बाढ़ झेलने की श्रीनगर शहर की क्षमता काफ़ी कम हुई। वर्ष 2010 में बाढ़ के ख़तरे को कम करने के लिए उत्तरी कश्मीर की वूलर झील की काई साफ़ करने की एक योजना भी बनायी गयी थी। परन्तु जैसा कि अन्य क्षेत्रों में होता है, यह योजना भी सिर्फ़ सरकारी फाइलों की धूल फांकती रही। झेलम नदी पर बाढ़ की चेतावनी देने की कोई व्यवस्था उपलब्ध न होने की वजह से भी इस आपदा की आकस्मिकता बढ़ी। पर्यावरणविदों द्वारा ऐसी आपदा की चेतावनी दिये जाने के बावजूद जम्मू एवं कश्मीर सरकार व केन्द्र सरकार ऐसी आपदा से निपटने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थी। पिछले कुछ दशकों से भारत सरकार ने जम्मू एवं कश्मीर को महज़ सुरक्षा के दृष्टिकोण से देखते हुए अपना पूरा ध्यान आतंकवादियों से निपटने में लगाया और यही वजह थी कि उसके पास ऐसी आपदा से निपटने की कोई योजना नहीं थी। जम्मू एवं कश्मीर के मुख्यमंत्री ओमर अब्दुल्ला ने भी माना कि घाटी में बाढ़ आने के शुरुआती कुछ दिनों में तो मानो वहाँ का सिविल प्रशासन बाढ़ के पानी में बह सा गया था।

जम्मू एवं कश्मीर की बाढ़ के बाद भारतीय बुर्जुआ मीडिया और बुद्धिजीवियों के एक हिस्से ने यह उम्मीद बाँधनी शुरू कर दी की भारतीय सेना के राहत और बचाव कार्यों से कश्मीरी जनता भारत पर फिदा हो जायेगी और इस प्रकार यह राहत और बचाव कार्य कश्मीर में भारत के लिए 'टर्निंग प्वाइंट' साबित होगा। लेकिन इस किस्म के बचकाने विश्लेषण भारत के टीवी दर्शक मध्यवर्ग को आत्ममुग्ध करने से ज़्यादा और कुछ नहीं करते। भारतीय मध्यवर्ग सेना के इस मानवीय चेहरे की तारीफ़ करता नहीं अघाता। परन्तु यदि कश्मीरियों की बात की जाये तो उनमें सेना के बचाव कार्यों में कुलीनों और पर्यटकों का तवज्जो देने और अन्तर्राष्ट्रीय मदद न स्वीकार करने से असंतोष ही देखने में आया। बाढ़ से पीड़ितों के पुनर्वास का कोई इंतज़ाम न होता देख कश्मीरियों की ग़रीब आबादी में खासतौर पर गुस्सा देखने में आया। जिन लोगों के पास बहुमंजिला घर थे वे तो अपने घरों की ऊपरी मंजिलों और छतों पर चले गये, लेकिन झोपड़पट्टी में रहने वाले ग़रीबों की तो मानो इस बाढ़ ने पूरी दुनिया ही उजाड़ दी। सेना के ख़िलाफ़ असंतोष इस हद तक था कि बचाव और राहत कार्य के दौरान भी कश्मीर में कुछ स्थानों पर स्थानीय लोगों द्वारा सेना का पत्थरों से स्वागत किया गया। ज़ाहिर है कि पिछले 67 सालों लगातार बढ़ रहे कश्मीरियों के भारतीय बुर्जुआ राज्यसत्ता से अलगाव को एक प्राकृतिक आपदा में राहत एवं बचाव कार्य करके उसका ढिंढोरा पीटने से ख़त्म नहीं किया जा सकता।

कश्मीर में बाढ़ की त्रासदी के बाद वहाँ की आम ग़रीब जनता ने भारतीय राज्य के भेदभावपूर्ण आचरण के साथ ही साथ तथाकथित अलगाववादी नेताओं की उनसे दूरी भी देखी है। कश्मीरियों की जो ग़रीब आबादी भारी पैमाने पर बाढ़ के बाद बेघर हुई है उनको अब अस्थायी पुनर्वास केन्द्रों से निकाल बाहर किया जा रहा है और कश्मीरियों के रहनुमा होने का दावा करने वाले ये नेता भी उनको पूछ लेने नहीं आ रहे हैं। ये नेता भी भारतीय सेना की ही तरह ही आम जनता के दुखों-तकलीफ़ों को बाँटने की बजाय राहत कार्यों के नाम पर फोटो खिंचवाने और मीडिया प्रबंधन में ही मशगूल रहे जिससे कश्मीरी आबादी के एक हिस्से में उनके ख़िलाफ़ भी गुस्सा देखा गया।

एक बात साफ़ है जहाँ एक ओर पिछले 67 के दौरान भारतीय राज्यसत्ता के दमन-उत्पीड़न और वायदाख़िलाफ़ी की वजह से कश्मीर की जनता का भारतीय राज्यसत्ता से बढ़ता अलगाव कश्मीर की हालिया बाढ़ के बाद कम होने की बजाय बढ़ा ही है वहीं दूसरी ओर तथाकथित अलगाववादी भी इस बाढ़ में आम ग़रीब कश्मीरी आबादी से कटे नज़र आये। इन अलगाववादी नेताओं ने पहले ही कश्मीरी अवाम के न्यायपूर्ण संघर्ष को इस्लामिक कट्टरपंथ के खड्ड में झोंककर उसे पहले ही काफ़ी नुकसान पहुँचाया हैं। कश्मीर की बाढ़ से पहले ही यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि कश्मीरी अवाम की ज़िन्दगी में बेहतरी तभी आ सकती है जब मज़हबी कट्टरपंथियों को किनारे लगाकर उनके बीच से ही एक धर्मनिरपेक्ष रैडिकल नेतृत्व खड़ा हो जो कश्मीरियों के आत्मनिर्णय के संघर्ष को भारत के सर्वहारा के पूँजीवाद-विरोधी संघर्ष से जोड़ सके। कश्मीर की बाढ़ के बाद अब इसमें कोई शक़ नहीं रह गया है कि यदि समय रहते कश्मीरी जनता के संघर्ष को समूचे भारत की सर्वहारा आबादी के पूँजीवाद विरोधी संघर्षों से जोड़ कर बेहिसाब मुनाफ़े पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था को धूल में न मिटाया गया तो यह व्यवस्था कश्मीर जैसी खूबसूरत वादियों को तबाह कर देगी।

– आनन्द सिंह

दोनों हाथ मज़दूर को लूटो, बोलो 'श्रमेव जयते'!

(पेज 1 से आगे)

हक़ों के लिए लड़ रहे थे (जिनके 147 साथी तीन वर्ष से अब भी जेल में हैं), उनमें से ज़्यादातर आईटीआई पास थे और भयंकर शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठा रहे थे। बड़ी संख्या में कम्पनियाँ आईटीआई पास नौजवानों को आधे वेतन पर कई-कई साल तक अप्रेण्टिस के तौर पर खटाती हैं और अक्सर तो स्थायी करने के बजाय उन्हें निकालकर नये अप्रेण्टिस भरती कर लेती हैं। आधुनिक टेक्नोलॉजी वाली मशीनों पर काम करने के लिए पूँजीपतियों को प्रशिक्षित मज़दूर चाहिए, लेकिन ये मज़दूर उन्हें अपनी शर्तों पर चाहिए। इसी के लिए तरह-तरह के जुमले उछालकर लोगों को भरमाया जा रहा है। ऐसे ही होंगे वे रोज़गार जिनका वादा मोदी सरकार बार-बार करती आ रही है।

दूसरी बात, 'श्रमेव जयते' के इस नये शिगूफ़े को सरकार के अन्य मज़दूर-विरोधी क़दमों से काटकर नहीं देखा जा सकता। सत्ता में आने के कुछ ही दिनों के भीतर मोदी ने पूँजीपति वर्ग के रास्ते से श्रम क़ानूनों के 'स्पीड ब्रेकर' को हटाने का काम शुरू कर दिया था। केन्द्र में भाजपा की सरकार बनते ही 'ट्रायल' के तौर पर राजस्थान की वसुन्धरा राजे सरकार ने मज़दूर अधिकारों पर हमला करने वाले क़ानून पास किये जिनके बारे में विस्तार से हम 'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंकों में लिख चुके हैं। इनमें सबसे बड़ी बात यह थी कि 300 मज़दूरों तक के कारख़ाने में तालाबन्दी या मज़दूरोंको निकाल बाहर करने के लिए मालिक को अब सरकार से इजाज़त लेने की ज़रूरत नहीं रह गयी है और मज़दूरों के लिए यूनियन बनाना पहले से भी बहत अधिक कठिन बना दिया गया है। विश्व बैंक, भारतीय पूँजीपतियों के संगठन फिक्की, सीआईआई आदि बार-बार कहते रहते हैं कि संगठित क्षेत्र के मज़दूरों को श्रम क़ानूनों की सुरक्षा प्राप्त है, इसीलिए संगठित क्षेत्र में रोज़गार नहीं पैदा हो रहे हैं। इन पूँजीपतियों और उनके भोंपुओं का कहना है कि संगठित क्षेत्र में मालिकों को जब चाहे कारख़ाना बन्द करने की इजाज़त होनी चाहिए और उसके लिए सरकार से इजाज़त लेने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए; मज़दूरों को जब चाहे रखने और जब चाहे निकाल देने की सुविधा मालिकों और प्रबन्धन के पास होनी चाहिए क्योंकि इससे निवेश के लिए पूँजीपति प्रोत्साहित होंगे। इनकी यह भी सिफ़ारिश है कि ट्रेड यूनियनों के कारण उद्योग जगत को बढ़ावा नहीं मिलता इसलिए ट्रेड यूनियन क़ानून में बदलाव करके ट्रेड यूनियनों का पंजीकरण मुश्किल कर देना चाहिए। राजस्थान सरकार की झाँकी सभी पूँजीपतियों को काफी पसन्द आयी और अब मोदी सरकार ने इन सभी माँगों को पूरा करते हुए कारख़ाना अधिनियम, औद्योगिक विवाद अधिनियम, ठेका मज़दूर क़ानून, ट्रेड यूनियन क़ानून आदि में बदलाव करने की तैयारी कर रही है।

मोदी के प्रचार में देश-विदेश के पूँजीपति वर्ग ने यूँ ही हज़ारों करोड़ रुपये नहीं बहाये थे। मीडिया ने हज़ारों करोड़ रुपये पानी की तरह बहाकर मोदी की छवि बनायी जो जादू की छड़ी घुमाते ही सारी समस्याओं का समाधान कर देगा। गुजरात मॉडल की एक झूठी तस्वीर पेश की गयी। लोगों को यह नहीं बताया गया कि गुजरात मज़दूरों के लिए एक यातना गृह है जहाँ श्रम विभाग को लगभग समाप्त कर दिया गया है; जहाँ ग़रीबों और अमीरों के बीच की खाई देश के अन्य कई राज्यों के मुकाबले कहीं ज़्यादा है; गुजरात में भुखमरी और कुपोषण की स्थिति भयंकर है। केवल उस गुजरात की तस्वीर पेश की गयी जिसमें व्यापारी, उद्योगपति और खाता-पीता मध्यवर्ग बसता है, जो कि वास्तव में गुजरात के मेहनतकशों के ख़ून को निचोड़कर ऐशो-आराम की ज़िन्दगी बसर कर रहा है। मोदी सरकार बनाने के लिए देश के पूँजीपतियों ने अपनी पूरी ताक़त झोंक दी और झूठ को सच बनाने की मशीनरी को दिनों-रात पूरे ज़ोर-शोर से चलाया। अब मोदी सरकार अगर इन्हीं पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भरने के रास्ते के सारे काँटे हटा रही है, तो इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं है।

एक के बाद एक जनविरोधी क़दम

सत्ता के पाँच महीनों में ही जिस रफ़्तार से मोदी सरकार ने जन-विरोधी क़दम उठाये हैं उसमें हैरत की कोई बात नहीं है। वे अच्छी तरह जानते हैं कि लोगों में इन क़दमों की वजह से असन्तोष पनपने और झूठे प्रचार की कलई खुलने में ज़्यादा वक़्त नहीं लगेगा। इसीलिए वे मीडिया मैनेजमेण्ट, संघी संगठनों द्वारा 'लव जिहाद', गाय बचाओ आदि मुद्दे उछालने और 'स्वच्छ भारत' अभियान जैसी शिगूफ़ेबाज़ियों के ज़रिये लोगों का ध्यान भटकाने में लगे हुए हैं। झूठे मुद्दों की हवा-हवाई बातों के बीच बहुतेरे लोगों का ध्यान इस ओर नहीं गया कि सरकारी नीतियों के कारण दवाओं के दाम में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हो गयी है। कैंसर की दवा जेफ्टिनेट ग्लीवेक जो 5900 से 8500 रुपये में मिलती थी अब बढ़कर 11,500 से 1,08,000 रुपये के बीच बिक रही है। 92 से 147 रुपये के बीच बिकने वाली रक्तचाप की दवा कार्डेस प्लेविस अब 147 से 1650 के बीच मिल रही है। एंटी रैबीज़ इंजेक्शन कैमरैब की कीमत 2670 रुपये से बढ़कर 7000 रुपये हो गयी है। सरकारी आँकड़ों के हिसाब से, इस समय देश में 4.1 करोड़ लोग डायबिटीज़ से, 4.7 करोड़ लोग हृदय रोग से, 22 लाख लोग टीबी से और 11 लाख लोग कैंसर के रोगी हैं। कई संगठनों के मुताबिक मरीज़ों की वास्तविक संख्या इससे कहीं अधिक है और इनमें सबसे बड़ी तादाद गरीब और निम्न मध्यम वर्ग के रोगियों की है जिनके लिए महँगी दवाओं का मतलब है, इलाज उपलब्ध होते हुए भी मौत को गले लगाना। आँकड़ों के खेल के ज़रिये महँगाई कम होने के दावे उछालने के बावजूद आम मेहनतकश आदमी जानता है कि बाज़ार में महँगाई कम नहीं हुई है। बुनियादी ज़रूरत की सारी चीज़ों में अब भी आग लगी हुई है। हाँ, महँगाई घटने की बात कहकर पूँजीपतियों ने रिज़र्व बैंक से ब्याज की दरें घटाने का शोर ज़रूर शुरू कर दिया है।

और यह तो अभी झाँकी है! हरियाणा और महाराष्ट्र के चुनावों के तुरन्त बाद कुछ बड़े निर्णय लिये जाने वाले हैं। पंजाब की तर्ज़ पर अन्य राज्यों में और केन्द्र के स्तर कई दमनकारी काले क़ानून बनने हैं और जन-प्रतिरोधों को कुचलने के लिए दमनतंत्र को और अधिक कारगर बनाया जाना तय है। प्राकृतिक गैस के दामों में भारी बढ़ोत्तरी होगी, रियायती गैस सिलेण्डर की संख्या 12 से घटाकर 9 किये जायेंगे, आम गैस सिलेण्डर की कीमत में 100 रुपये तक की बढ़ोत्तरी की जा सकती है। उच्च शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा के तेज निजीकरण की राह की बाधाओं को दूर करना सरकार की प्राथमिकता में है। फीसों में दस गुने से लेकर 40 गुने तक की भारी बढ़ोत्तरी होने की सम्भावना है। इसके साथ ही, भगवाकरण की जारी मुहिम को और तेज करने के लिए एन.सी.ई.आर.टी, भाजपा शासित राज्यों के शिक्षा बोर्ड, यू.जी.सी. और सभी स्वायत्त शोध संस्थानों के ढाँचे, पाठ्यक्रमों और शोध परियोजनाओं में बदलाव किये जाने की तैयारी की जा रही है।

हरियाणा और महाराष्ट्र विधानसभा चुनावों में भाजपा की जीत की भविष्यवाणी सभी 'एक्ज़िट पोल' में की गयी है। यह अप्रत्याशित नहीं है। मोदी लहर का चुनावी बुखार इतनी जल्दी उतर पाना सम्भव नहीं था। आने वाले वर्षों में उदारीकरण-निजीकरण नीतियों पर अन्धाधुन्ध अमल के परिणाम बेहिसाब मँहगाई, बढ़ती बेरोज़गारी और मज़दूरों की बेलगाम लूट के रूप में सामने आने ही हैं। तब एक बार फिर दमनतंत्र और साम्प्रदायिक आधार पर जनता को बाँटने का फार्मूला ही काम आयेगा। दमनतंत्र को चाक-चौबन्द करने का काम तेजी से जारी है। लोकरंजक नारों के साथ-साथ साम्प्रदायिकता के मुद्दों को लगातार हवा देकर जिलाये रखा जा रहा है। मगर इन चुनाव परिणामों से यह नतीजा निकालना बेवकूफ़ी होगी कि जनता में मोदी सरकार के कामों की लोकप्रियता का उसे ईनाम मिला है।

पूँजीवादी जनवाद के अन्तर्गत चुनाव सिर्फ़ यह तय करते हैं कि शासक वर्गों की कौन-सी पार्टी समय विशेष में सरकार बनाकर पूँजीपतियों की 'मैनेजिंग कमेटी' का काम करेगी और धनबल, मीडिया प्रबन्धन और बड़े निर्वाचक मंडलों की व्यवस्था के चलते प्रायः वही पार्टी चुनाव जीतती है। अपने तमाम आपसी झगड़ों के बावजूद नवउदारवाद की नीतियों पर साम्राज्यवादियों, देशी छोटे-बड़े पूँजीपतियों, बैंकरों, फार्मरों-कुलकों, बिचौलियों-दलालों और उच्चे मध्यम वर्ग की आम सहमति है और भाजपा फिलहाल एकमात्र ऐसी संगठित राजनीतिक शक्ति है जो इन नीतियों को डण्डे के ज़ोर पर लागू कर सकती है।

मुमकिन है कि अगले लोकसभा चुनावों तक, मोदी लहर का बुखार उतर जाये और नये सिरे से संगठित होकर कांग्रेस-नीत मोर्चा शासक वर्गों के समक्ष अपने को भरोसेमन्द विकल्प के रूप में पेश करने में सफल हो जाये या क्षेत्रीय पार्टियाँ और भाँति-भाँति की सामाजिक-जनवादी पार्टियाँ तीसरे मोर्चे की कोई सतमेल खिचड़ी पकाकर कुछ समय के लिए सरकार बना लें, जैसा कि पहले भी होता रहा है। लेकिन एक बात तय है। अब नव उदारवाद से पीछे नेहरूकालीन तथाकथित कल्याणकारी राज्य और 'पब्लिक सेक्टर' अर्थव्यवस्था की ओर वापसी सम्भव नहीं है। पूँजीवादी व्यवस्था के कीन्सियाई इलाज का दौर अब निर्णायक रूप से बीत चुका है। अब ज़्यादा से ज़्यादा एन.जी.ओ.-सुधारवाद के द्वारा कुछ 'सेफटीवॉल्व' ही लागू कर पाना सम्भव है। इसलिए दुनिया भर की कारपोरेट ताकतें और उनके थिंक टैंक, पूँजी, प्रचार और नयी-नयी सैद्धान्तिकियों से एन.जी.ओ. के 'थर्ड सेक्टर' को बढ़ावा देने में लगे हैं। कैलाश सत्यार्थी और मलाला युसुफज़ई को नोबेल पुरस्कार दिये जाने को भी इसी परिप्रेक्ष्य में समझा-देखा जा सकता है।

भाजपा आगामी लोकसभा चुनाव यदि हार भी जाये, तो भी नवउदारवादी नीतियों पर अमल जारी रहेगा और उन नीतियों का कहर झेल रही जनता के हर प्रतिरोध को बर्बरतापूर्वक कुचलने कर सिलसिला सघन होता जायेगा, सरकार चाहें जिस किसी पार्टी या गठबंधन की हो। पूँजीवाद का वर्तमान चरण विश्व ऐतिहासिक स्तर पर पूँजीवादी जनवाद के अन्तर्वस्तु के क्षरण-विघटन और उसकी सीमाओं के संकुचन का ऐसा दौर है जिसे पलटा नहीं जा सकता। जो लोग पूँजीवाद का विरोध किये बिना फासीवाद का विरोध करते हैं और जो लोग अभी भी "कल्याणकारी राज्य" की वापसी के कीन्सियाई यूटोपिया का विकल्प पेश करते हुए नवउदारवाद और भूमण्डलीकरण की नीतियों का विरोध करते हैं, वे वस्तुगत तौर पर, जनता को भ्रामक निदान सुझाकर प्रतिक्रिया की ताक़तों की ही मदद करते हैं।

भाजपा सत्ता में रहे या न रहे, नवउदारवादी नीतियाँ जारी रहेंगी और बुर्जुआ राज्यसत्ता के ज़्यादा से ज़्यादा निरंकुश दमनकारी होते जाने की प्रक्रिया जारी रहेगी। दूसरी बात, भाजपा सत्ता में रहे या न रहे, एक फासीवादी धुर प्रतिक्रियावादी शक्ति के रूप में इसकी प्रभावी मौजूदगी और इसका व्यापक सामाजिक आधार भारतीय समाज में बना रहेगा। नवउदारवादी दौर के रुग्ण और संकटग्रस्त पूँजीवाद में भारतीय समाज में फासीवाद की नर्सरियों का लगातार स्वतःस्फूर्त गति से विकास हो रहा है। फासीवाद मुख्यतया इजारेदार वित्तीय पूँजी के सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी चरित्र की नुमाइन्दगी कर रहा है, लेकिन संकटग्रस्त छोटे व्यापारी, छोटे पूँजीपति, कुलक-फार्मर-धनी किसान और खुशहाल परजीवी मध्यवर्गीय जमातें इसका प्रमुख सामाजिक आधार हैं तथा उत्पादन की प्रक्रिया से बाहर धकेल दी गयी विमानवीकृत होती जा रही मज़दूर आबादी के एक हिस्से में, उजड़ते छोटे मालिकों में और पीले बीमार चेहरों वाले अलगावग्रस्त निम्न बुर्जुआ युवाओं में भी लोकरंजकतावादी, अन्धराष्ट्रवादी और उन्मादी कट्टरपंथी नारों के द्वारा फासीवाद अपना एक व्यापक सामाजिक आधार तैयार करने के काम में लगातार लगा हुआ है।

हिन्दुत्ववादी फासीवाद से लड़ाई कोई फौरी या अन्य बुर्जुआ ताकतों से रणकौशलात्मक मोर्चा बनाकर लड़ी जाने वाली लड़ाई नहीं है, सवाल बुर्जुआ जनवाद की हिफ़ाज़त का नहीं है। वह तो स्वयं अपनी आर्थिक गतिकी से छीज-सिकुड़ रहा है। बेशक, लम्बी लड़ाई में ऐसे 'टैक्टिकल' मोर्चों के अल्पकालिक दौर आ सकते हैं (जिनका लाभ भी तभी उठाया जा सकता है जब सर्वहारा की हरावल पाँते संगठित हों), लेकिन मुख्य बात यह है कि टैक्टिक्स से पहले दूरगामी रणनीति (स्ट्रैटेजी) के पहलुओं पर सोचा जाना चाहिए। फासीवाद से संघर्ष की तैयारी पूँजीवाद विरोधी क्रान्तिकारी तैयारी की ही अविभाज्य कड़ी है। यह अवस्थितियों के युद्ध (पोज़ीशनल वारफेयर) के रूप में जारी एक वर्गयुद्ध है। फासीवादियों ने समाज में तरह-तरह की संस्थाओं, आयोजनों और नियमित कार्रवाइयों के रूप में अपनी खन्दकें खोद रखी हैं और बैरीकेड खड़े कर रहे हैं। सर्वहारा क्रान्तिकारियों को भी यह करना होगा। उन्हें विभिन्न प्रकार की संस्थाओं, आयोजनों, नियमित सामाजिक-सांस्कृतिक कार्रवाइयों, युवाओं-स्त्रियों-मज़दूरों आदि के स्वयंसेवक दस्ते, बनाने जैसी कार्रवाइयों में लगना होगा। यह काम मुख्यतया मज़दूरों और गरीब आबादी की बस्तियों में करना होगा। साथ ही, प्रगतिशील, रैडिकल बौद्धिक मध्यवर्गीय जमातों को भी सांस्कृतिक-बौद्धिक जुटान के केन्द्रों पर लाना होगा तथा सामाजिक सरोकार के मुद्दों पर उन्हें सड़कों पर उतरने के लिए तैयार होना होगा। मज़दूर वर्ग को जबतक अर्थवाद के भँवर से बाहर लाकर विविध उपक्रमों के ज़रिए राजनीतिक चेतना नहीं दी जायेगी, तबतक उसे फासीवाद के विरुद्ध जुझारू संघर्ष के लिए तैयार करने का सपना भी नहीं देखा जा सकता। और तय है कि मज़दूर वर्ग को लामबन्द किये बिना फासीवाद-विरोध के तमाम उद्यम पूँजीवादी जनवाद और निष्क्रिय उग्रपरिवर्तनवाद के भँवर में

अमीर और ग़रीब के बीच बढ़ती खाई से दुनिया भर के हुक्मरान फ़िक्रमन्द

आख़िर ये माजरा क्या है?

2008 से जारी विश्वव्यापी मन्दी के पहले दुनिया भर के हुक्मरान और उनके कलमघसीट बुद्धिजीवी पूँजीवाद की विजय के उन्मादपूर्ण जश्न में मशगूल थे। दुनिया भर में फैली भयंकर ग़रीबी, भुखमरी, कुपोषण एवं अमीर और ग़रीब के बीच बढ़ती खाई को अव्वलन तो वे मानने से ही इन्कार करते थे और यदि वे मानते थे तो इन समस्याओं के हल के रूप में वे 'ट्रिकल डाउन थियरी' की बात करते थे जिसके अनुसार समाज के शिखरों में समृद्धि आने से कालान्तार में यह समृद्धि रिसकर रसातल की ओर भी जायेगी और इसलिए आम जनता को अपनी खुशहाली के लिए थोड़ा सब्र करना चाहिए। परन्तु मौजूदा विश्वव्यापी मन्दी के बाद से इन हुक्मरानों और उनके लग्गुओं-भग्गुओं के सुर बदले-बदले नज़र आ रहे हैं। ये सुर इतने बदल गये हैं कि विभिन्न देशों के शासकों और उनके भाड़े के टट्टू बुद्धिजीवियों और उपदेशक धर्मगुरुओं के हालिया बयानों को बिना आलोचनात्मक विवेक से पढ़ने पर कोई इस नतीजे पर भी पहुँच सकता है कि इन लुटेरों का हृदय परिवर्तन हो गया है और अब वे अपनी लूट में कमी लायेंगे और आम जनता का भला करेंगे।

कुछ समय पहले साम्राज्यवादियों के सरगना अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा ने अमेरिकी समाज में तेज़ी से बढ़ती आर्थिक असमानता पर चिन्ता ज़ाहिर करते हुए कहा था कि यह असमानता अमेरिकी जनता में भयंकर निराशा और हताशा पैदा कर रही है क्योंकि उन्हें लगने लगा है कि वे कितनी भी मेहनत करें, आगे नहीं बढ़ सकते। इसाई धर्म गुरू पोप फ्रांसिस, जो स्वयं दुनिया के सबसे अधिक विलासितापूर्ण परिवेश वेटिकन में रहते हैं, ने तो ओबामा से भी अधिक उग्र होकर सीधे-सीधे पूँजीवाद पर हमला करते हुए कहा था कि ''पैसे की पूजा'' एक ''नयी निरंकुशता'' को जन्म देगी। इसी तरह से आलीशान महलनुमा आवास में रहने वाले तिब्बती बौद्ध धर्मगुरू दलाई लामा भी पूँजीवाद द्वारा फैलायी जा रही आर्थिक असमानता पर इतने चिन्तित हो उठे कि उन्होंने खुद को मार्क्सवाद का समर्थक तक बता दिया। उन्होंने कहा कि ग़रीब और बेसहारों को देखभाल की ज़रूरत है जबकि पूँजीवाद सिर्फ़ मुद्रा छापने में लगा हुआ है। अभी हाल ही में नरेन्द्र मोदी ने भी संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेंबली में दिये गये अपने भाषण में भी दुनिया में सैनिटेशन, बिजली, पानी आदि की सेवाओं में भयंकर असमानता पर चिन्ता ज़ाहिर की और दुनिया भर के हुक्मरानों को इन मुद्दों को एजेण्डे पर लाने की बात की। इससे पहले मोदी ने प्रधानमंत्री जन-धन योजना को लांच करते हुए भी ग़रीबों के साथ होने वाले वित्तीय भेदभाव पर बहुत आँसू बहाये थे।

सिर्फ़ पूँजीवादी राजनेता और धर्मगुरू ही नहीं बल्कि बुर्जुआ बुद्धिजीवी और थिंकटैंक भी पिछले कुछ अरसे से दुनिया भर में बढ़ती असमानता पर खूब आँसू बहा रहे हैं। दुनिया भर के पूँजीपतियों के जमावड़े दावोस के विश्व आर्थिक मंच में इस साल का केन्द्रीय मुद्दा बढ़ती आर्थिक असमानता ही था। इस आयोजन के ठीक पहले साम्राज्यवादी दाता एजेंसी ऑक्सफैम ने 'वर्किंग फॉर द फ्यू' के नाम से एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी जिसमें यह कहा गया था कि दुनिया के अधिकांश देशों में आर्थिक असमानता बढ़ रही है। इस रिपोर्ट का कहना था कि दुनिया की सम्पदा दो हिस्सों में विभाजित है: लगभग आधा हिस्सा 1 फीसदी अमीर लोगों के पास है और बाकी आधा शेष 99 फीसदी लोगों के पास। इस रिपोर्ट में यह भी लिखा है कि दुनिया में सिर्फ 85 रईसों के पास इतनी सम्पत्ति है जितनी दुनिया के साढ़े तीन अरब ग़रीबों के पास है जोकि दुनिया की आबादी का आधा हिस्सा है। विश्व आर्थिक मंच ने भी 'ग्लोबल रिस्क रिपोर्ट' में आर्थिक असमानता को आने वाले दिनों में सबसे प्रमुख चुनौतियों में से एक बताया था।

अभी हाल ही में अमेरिका की क्रेडिट रेटिंग एजेंसी स्टैंडर्ड एण्ड पूअर्स ने अपनी एक रिपोर्ट में यह दावा किया है कि आय का असमान वितरण अमेरिका को मन्दी से बाहर निकलने में काफी मुश्किलें पैदा कर रहा है। फ्रांस के अर्थशास्त्री थॉमस पिकेटी की बहुचर्चित पुस्तक ''21 वीं सदी में पूँजी'' में भी बढ़ती हुई आर्थिक असमानता को इस विश्वव्यापी मन्दी की मुख्य वजह बताया गया है। नोबेल पुरस्कार विजेता पॉल क्रुगमैन और अमर्त्य सेन जैसे लोग भी बढ़ती आर्थिक असमानता पर लिखने में काफी स्याही खर्च कर रहे हैं। ब्रिटिश वित्तीय पूँजी के मुखपत्र की हैसियत रखने वाली पत्रिका 'द इकोनॉमिस्ट' का हालिया अंक बढ़ती आर्थिक असमानता पर ही केन्द्रित है।

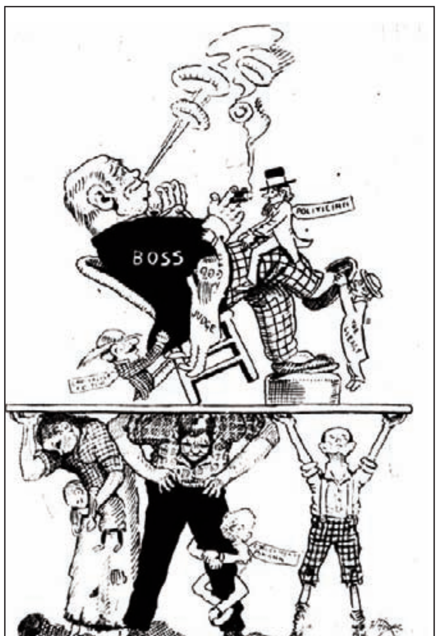

ऐसे में सवाल यह उठता है कि पूँजीवादी लुटेरों के ये नुमाइंदे भला क्यों ग़रीबों के ग़म में दुबले हुए जा रहे हैं? यदि आप राजनीतिक रूप से चेतनासम्पन्न नहीं हैं तो आप यह मानने की भूल कर सकते हैं कि वाकई इन लुटेरों का हृदय परिवर्तन हो रहा है। लेकिन थोड़ा गहराई से समझने पर इसकी वजह जानी जा सकती है। दुनिया भर में आम मेहनतकश जनता मंदी का दंश झेल रही है, रोज़गार के अवसर सीमित हुए हैं, नौकरी में अनिश्चितता बढ़ी है, तनख़्वाहों और सुविधाओं में भयंकर कटौती हुई है जिनकी वजह से दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में जनअसंतोष का ज्वार उठता दिखायी दे रहा है। ऐसे में दुनिया भर के हुक्मरानों और उनके टुकड़खोर बुद्धिजीवियों और धर्मगुरुओं को यह चिन्ता सताये जा रही है कि कहीं इन जनान्दोलनों के आगे बढ़ने के साथ ही साथ जनता में यह चेतना न आ जाये कि दरअसल इन तमाम समस्याओं की जड़ मुनाफ़े की अंधी हवस पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था है जिसको नेस्तनाबूत करके ही मेहनत-मशक्कत करने वाली आबादी की ज़िन्दगी में बेहतरी आ सकती है। इसलिए ऐसी चेतना फैलने से पहले ही शासक वर्ग जनता के बीच तमाम समस्याओं के विश्लेषण को एक ऐसा व्याख्यात्मक ढाँचा पहुँचाने की कोशिश में लगा है जिसके ज़रिये वे इस चेतना को फैला सकें कि दरअसल समस्या पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में नहीं है, बल्कि असमान वितरण में है। वे इस सच्चाई को अपनी व्याख्याओं के तले दबा देना चाहते हैं कि पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था अपनी स्वाभाविक गति से ही ऐसा समाज बनाती है जिसमें आँसुओं के समन्दर में विलासिता के महज़ चन्द टापू दिखायी पड़ते हैं। पूँजीवादी उत्पादन के दौरान पूँजी संचय की प्रक्रिया में असमानता अवश्यंभावी है। यानी असली समस्या वितरण के क्षेत्र की नहीं बल्कि उत्पादन के क्षेत्र की है।

एक बार समस्या के स्रोत को उत्पादन के क्षेत्र से वितरण के क्षेत्र में धकेल देने पर पूँजीवाद की चौहद्दी की हिफ़ाज़त करते हुए उसके भीतर ही वितरण के क्षेत्र में कुछ असमानता कम करने की बातें करके भ्रम फैलाना आसान हो जाता है। इस प्रकार तमाम पढ़े-लिखे लोग और अपने आपको प्रगतिशील और वामपंथी कहने वाले लोग इस तरह की व्याख्या पर यकीन करते हुए पाये जाते हैं। वितरण के क्षेत्र में असमानता को कम करने के लिए सरकार को कुछ कड़े कदम उठाने की बातें करना आसान हो जाता है। तमाम थिंकटैंक इन दिनों सरकारों पर प्रगतिशील कर प्रणाली, रईसजादों पर कर, सरकार द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे जनकल्याणकारी कामों में निवेश करने एवं भ्रष्टाचार पर लगाम कसने की सलाह देते फिर रहे हैं।

वितरण के क्षेत्र में असमानता दूर करने के लिए एक अन्य नीमहकीमी नुस्ख़ा जिसको ज़ोरशोर से प्रचारित किया जाता है, वह है चैरिटी! दुनिया भर में 'कॉरपोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी' के तहत ग़रीबों की ओर ख़ैरात के टुकड़े इसी मक़सद से फेंके जाते हैं। अभी कुछ दिनों पहले ही दुनिया के तमाम मुल्कों में आदिवासियों को उनके जल, जंगल और जमीन से उजाड़कर अकूत सम्पत्ति बनाने वाले वेदान्ता समूह के अनिल अग्रवाल ने अपनी संपत्ति का 75 फ़ीसदी हिस्सा चैरिटी में खर्च करने का फैसला किया है। इसी तरह इन दिनों सोशल मीडिया पर 'आइस बकेट चैलेंज' और 'राइस बकेट चैलेंज' जैसे प्रायोजित अभियान भी बुर्जुआ चैरिटी को ही बढ़ावा दे रहे हैं जो वास्तव में ग़रीबों के साथ भद्दे मज़ाक से अधिक कुछ नहीं हैं। सच्चाई ये है कि इन ख़ैरातों से आर्थिक असमानता में रत्ती भर भी कमी नहीं आने वाली क्योंकि जो पूँजीपति ख़ैरात बाँटने में दोस्ताना होड़ कर रहे हैं वही उत्पादन के क्षेत्र में श्रम को निचोड़कर मुनाफ़ा कमाने में गलाकाटू होड़ करते हैं जो दिन-ब-दिन, घण्टे-दर-घण्टे असमानता को जन्म देती है।

– आनन्द सिंह

मोदी सरकार का नया तोहफ़ा : जीवनरक्षक दवाओं के दामों में भारी वृद्धि

(पेज 1 से आगे)

भूमिका अदा करने वाली सरकारें जनता में यह भ्रम ज़िन्दा रखने का काम करती हैं कि सरकार को आम जनता की कितनी "चिन्ता" है। दवाओं के मूल्य नियंत्रण की कवायदें भी इसी का हिस्सा हैं। हालाँकि मौजूदा मोदी सरकार ने तो जनता की चिन्ता का स्वांग रचने के लिए अपना जनमुखी मुखौटा भी उतार फेंककर स्पष्ट कर दिया है कि बड़े-बड़े पूँजीपतियों के मुनाफ़े की दर को अप्रत्याशित रूप में बढ़ाने के लिए वह कितनी आतुर है।

यहाँ जानना ज़रूरी होगा कि दवा मूल्य नियंत्रण प्राधिकरण द्वारा जुलाई माह में 108 दवाओं को मूल्य नियंत्रित करने कवायद के ख़िलाफ़ कई दवा कम्पनियों ने अदालत का दरवाज़ा खटखटाया और सरकार की सार्वजनिक आलोचना की। यूरोप और अमेरिकी दवा कम्पनियाँ तो पहले से ही इस मसले पर भारत सरकार से ख़फ़ा थीं। दवा मूल्य नियंत्रण प्राधिकरण के जुलाई महीने में लिए गये फैसले ने आग में घी डालने का काम किया। इस फैसले से अमेरिका और भारत के रिश्तों में काफ़ी तनाव आ गया था। मोदी सरकार ने तुरन्त घुटने टेकते हुए इस फैसले को वापस लिया ताकि अमेरिकी शासकों का दिल खुश किया जा सके। यूँ तो कांग्रेस सरकार ने ही वर्ष 2005 में मुख्यत: अमेरिकी दवा कम्पनियों के दबाव के आगे दण्डवत होते हुए बौद्धिक सम्पदा क़ानूनों में महत्वपूर्ण संशोधन करना स्वीकार कर लिया था। अमेरिकी पूँजी और खासकर दवा उद्योग में लगी पूँजी अपने बौद्धिक एकाधिकारी क़ानूनों को लागू करवाना चाहती है जिससे दवा निर्माण में उसका एकछत्र वर्चस्व कायम हो जाये। नरेन्द्र मोदी ने अमेरिकी यात्रा के दौरान अमेरिकी शासकों की कई शर्तों को मान लिया है। आम जनता का जीवन व चिकित्सा की उसकी ज़रूरतें ज़्यादा-से-ज़्यादा दवा कम्पनियों के चंगुल में फँसती जा रही हैं। सरकारें तो असल में दवा मूल्य नियंत्रण के नाम पर जनता को बेवकूफ़ बनाकर देशी-विदेशी दवा कम्पनियों के मुनाफ़े की रक्षा कर रही हैं।

आज दुनिया में हथियारों के बाद सबसे ज़्यादा मुनाफ़े का धन्धा दवाओं का व्यापार बन चुका है। जीवन के हर क्षेत्र की तरह ही दवाएँ भी मुनाफ़ा कमाने का एक ज़बर्दस्त ज़रिया बन गयी हैं। आज लाखों-लाख महज़ महँगी दवाओं के चलते छोटी-मोटी बीमारियों में भी अपना इलाज करवा पाने में सक्षम नहीं हैं। निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के चलते देश की सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली को पूरी तरह से ध्वस्त कर दिया गया है। इसका अन्दाज़ा तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि हमारे देश में दुनिया की कुल आबादी छठवाँ हिस्सा रहता है, लेकिन स्वास्थ्य पर पूरे विश्व द्वारा खर्च की जाने वाली कुल रकम का 1 प्रतिशत से भी कम हिस्सा भारत सरकार स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च करती है। जनता के स्वास्थ्य को पूरी तरह से बाज़ार की शक्तियों के रहमो-करम पर छोड़ दिया जा रहा है। स्वास्थ्य सेवाओं का प्रश्न केवल दवाओं तक सीमित नहीं है। आज दवा कम्पनियों से लेकर प्राइवेट अस्पतालों व डाक्टरों, पैथॉलोजी लैब एवं डायग्नॉस्टिक सेंटरों का जो पूरा ताना-बाना विकसित हुआ है उसने अपने ऑक्टोपसी जकड़बन्दी से जनता को इस क़दर अपनी गिरफ़्त में ले लिया है कि वे अपने आम जनता के शरीर से खून की आखिरी बूँद तक सोख लेना चाहती है। हमें यह समझना होगा कि स्वास्थ्य सेवा जनता का मूलभूत अधिकार है और जनता तक यह अधिकार पहुँचाने की ज़िम्मेदारी राज्य व्यवस्था की होती है। अगर कोई राज्य व्यवस्था अपनी इस ज़िम्मेदारी से मुँह चुरा ले तो क्या ऐसी राज्य व्यवस्था को बनाये रखने का कोई औचित्य है?

नौजवान भारत सभा का प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन

आज के दौर में जहाँ एक ओर पूँजीवादी व्यवस्था अपने ढाँचागत संकट से गुज़र रही है और बुर्जुआ जनवाद का रहा-सहा स्पेस भी सिकुड़कर तेजी से फासीवाद की शक्ल अख़्तियार कर रहा है, वहीं दूसरी ओर इस पूँजीवादी संकट को क्रान्तिकारी परिस्थिति में तब्दील करने वाली क्रान्तिकारी शक्तियाँ पूरी दुनिया में अभूतपूर्व बिखराव और भटकाव की शिकार हैं। क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर लगातार हावी है। चारों ओर अन्याय- अत्याचार-भ्रष्टाचार-लूट-बर्बरता और हताशा-निराशा का घटाटोप छाया हुआ है एवं गतिरोध की स्थिति कायम है। ऐसे में, कुछ लोग कहते हैं कि देश एक अन्धी गली के आखिरी मुकाम पर पहुँच गया है जबकि सच तो यह है कि देश एक ऐसे ज्वालामुखी के दहाने के एकदम करीब जा पहुँचा है जो फटने को तैयार है। मगर अभी बदलाव की लड़ाई में एक गतिरोध की स्थिति बनी हुई है।

ऐसे ही गतिरोध को तोड़ने के लिए शहीद-ए-आजम भगतसिंह ने क्रान्ति की स्पिरिट ताज़ा करने की बात कही थी। इसी मकसद को आगे बढ़ाने के लिए सक्रिय नौजवान भारत सभा (नौभास) का प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन भगतसिंह के 107वें जन्मदिवस के अवसर पर 26-27-28 सितम्बर को नई दिल्ली के अम्बेडकर भवन में आयोजित किया गया। भगतसिंह जैसे महान युवा क्रान्तिकारी के विचारों से प्रेरित इस संगठन के प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन को आयोजित करने का इससे बेहतर मौका कोई नहीं हो सकता था। ग़ौरतलब है कि 1926 में भगतसिंह और उनके साथियों ने औपनिवेशिक गुलामी के विरुद्ध भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन को नया वैचारिक आधार देने के लिए और एक नये सिरे से संगठित करने के लिए युवाओं का जो संगठन बनाया था उसका नाम भी नौजवान भारत सभा ही था। यह नाम अपनेआप में उस महान क्रान्तिकारी विरासत को पुनर्जागृत करने और उसे आगे बढ़ाने के संकल्प का प्रतीक है।

नौभास का यह सम्मेलन एक ऐसे समय में सम्पन्न हुआ जब 67 वर्षों की आज़ादी और तरक्क़ी का कुल अंजाम यह है कि आम मेहनतकशों के अथाह दुखों के सागर में समृद्धि के कुछ टापू उभर आये हैं, जिनपर विलासिता की मीनारें जगमगा रही हैं। पूँजीपतियों और धनिकों की ऊपर की पन्द्रह फ़ीसदी आबादी के लिए ही सारी तरक्क़ी है। 70 करोड़ मेहनतकशों की आबादी नर्क से भी बदतर जीवन बिता रही है। अपने हक़ के लिए आवाज़ उठाने वाली जनता के दमन के लिए तरह-तरह के काले क़ानून हैं और बर्बर दमन तंत्र है। देशी पूँजीपतियों के साथ ही देश को विदेशी लूट का भी खुला चरागाह बना दिया गया है। हर साल खरबों रुपये का मुनाफ़ा विदेशी कम्पनियाँ ले जाती हैं और अरबों रुपये विदेशी कर्ज़ों का सूद भरने में ही चले जाते हैं। लोगों को बलपूर्वक उजाड़कर जल-जंगल-जमीन की अकूत सम्पदा सरकार देशी-विदेशी पूँजीपतियों को कौड़ियों के मोल दे रही है। पूँजी की मार से दिवालिया लाखों आम किसान आत्महत्या कर रहे हैं और करोड़ों कंगाल होकर मज़दूरों की कतारों में शामिल हो रहे हैं। बेरोज़गारी और मँहगाई को हल करने के सारे वायदे सुनते युवाओं की कई पीढ़ियाँ बुढ़ा गयीं, पर ये समस्याएँ घटने के बजाय बढ़ती ही गयी हैं।

देश की चरम लुटेरी, घोर जनविरोधी और असाध्य संकटग्रस्त आर्थिक व्यवस्था की ही सघन अभिव्यक्ति घनघोर पतित, भ्रष्ट और बर्बर अत्याचारी राजनीतिक ढाँचे के रूप में हो रही है। अब इसमें सुधार की कोई उम्मीद नहीं है। सिर से पाँव तक पूरा सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक ढाँचा सड़ चुका है। अब इस ढाँचे को गहरे दफ़्न करके एक नये सामाजिक ढाँचे की बुनियाद डालनी ही होगी। देश को बचाने का एक ही रास्ता है। एक आमूलगामी सामाजिक जनक्रांति संगठित करने की दिशा में आगे बढ़ना होगा। अब इस्पाती संकल्पों के साथ एकजुट होकर संगठित होकर उठ खड़ा होना आज वक़्त की ज़रूरत है।

यह समाज हरकत में आये, इसके लिए सबसे पहले नौजवानों को कमान सँभालनी होगी। उन्हें आगे आना होगा, और जैसा कि भगतसिंह ने फाँसी की कोठरी से देश के नौजवानों को भेजे गये अपने आखिरी सन्देश में कहा था, मज़दूर क्रान्ति का सन्देश शहरों की मज़दूर बस्तियों और गाँवों की झोपड़ियों तक पहुँचाना होगा।

'नौजवान भारत सभा' इसी उद्देश्य से आम मेहनतकश जनता के बहादुर, इंसाफ़पसन्द, विद्रोही सपूतों को एक ठोस क्रान्तिकारी कार्यक्रम के आधार पर संगठित कर रहा है। इसी नाम से भगतसिंह ने लाहौर में नौजवान संगठन बनाया था। आज नयी क्रान्तिकारी भावना के साथ उसी नाम को ज़िन्दा किया गया है। इस क्रान्तिकारी नौजवान संगठन का उद्देश्य देश के बिखरे हुए युवा आन्दोलन को एक सही दिशा की समझ के आधार पर एकजुट करना और उसे व्यापक जनसमुदाय के साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी संघर्ष के एक अविभाज्य अंग के रूप में आगे बढ़ाना है।

सम्मेलन के प्रतिनिधि सत्र

सम्मेलन में पहले दो दिन के प्रतिनिधि सत्रों में दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और महाराष्ट्र के अलग-अलग हिस्सों से चुने हुए लगभग 150 नौजवान प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। सम्मेलन के अन्तिम दिन भगतसिंह के 107वें जन्मदिवस पर एक खुले सत्र का आयोजन किया गया जिसमें लगभग 300 लोगों ने हिस्सा लिया जिसमें प्रतिनिधियों के अतिरिक्त नौजवान भारत सभा के शुभचिंतक एवं समर्थक शामिल थे।

सम्मेलन के पहले दिन के प्रथम सत्र की शुरुआत नौजवान भारत सभा के झण्डारोहण से हुई। इसके बाद संयोजन समिति की तरफ से तपीश मैन्दोला ने पिछले दस वर्षों की रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा कि यह सम्मेलन एक ऐसे समय में हो रहा है जब हमारा देश आम जनता के बहादुर, इंसाफपसन्द, प्रगतिकामी युवा सपूतों से एक बार फिर उठ खड़े होने कि और आगे बढ़कर अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी को निभाने की माँग कर रहा है। रिपोर्ट में नौभास के नेतृत्व में चले जनान्दोलनों, प्रचार अभियानों और विभिन्न सांस्कृतिक और रचनात्मक कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया।

पहले दिन के द्वितीय सत्र में नौभास का मसौदा घोषणापत्र और मसौदा संविधान प्रस्तावित किया गया और उनके विभिन्न बिन्दुओं पर गहन बहस-मुबाहसा हुआ। मसौदा घोषणापत्र में यह लिखा है कि भगतसिंह के आदर्शों के अनुगामी नौजवानों का यह दायित्व है कि वे पूँजीवादी राजनीति के छल-छद्म का भण्डाफोड़ करते हुए धार्मिक कट्टरपंथी फासिस्ट ताकतों के विरुद्ध स्वयं जमीनी स्तर पर एकजुट हों और व्यापक मेहनतकश आबादी को भी संगठित करें। इस सत्र के अन्त में घोषणापत्र एवं संविधान पारित किया गया।

दूसरे दिन के प्रथम सत्र में अहम राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय मुद्दों पर प्रस्ताव पारित किये गये जिसमें शहीदों के लिए श्रद्धांजलि प्रस्ताव, मोदी सरकार की जनविरोधी नीतियों के विरोध में प्रस्ताव, दुनिया भर में बढ़ रहे धार्मिक कट्टरपंथ के ख़िलाफ़ प्रस्ताव, फिलिस्तीनी जनता के मुक्ति संघर्ष के समर्थन में प्रस्ताव, दुनिया भर में चल रहे जनान्दोलनों के समर्थन में प्रस्ताव, देश भर में चल रहे जनान्दोलनों के समर्थन और सत्ता तन्त्र द्वारा उनके दमन के विरोध में प्रस्ताव, संघ परिवार द्वारा चलायी जा रही 'लव जिहाद' की झूठी मुहिम पर निन्दा प्रस्ताव, पंजाब के काले कानून पर विरोध प्रस्ताव, स्त्री-विरोधी अपराधों के ख़िलाफ़ प्रस्ताव, दलित और जनजाति उत्पीड़न के खिलाफ प्रस्ताव, देश भर में जारी छात्र-युवा आन्दोलनों के समर्थन तथा उनके बर्बर दमन के विरुद्ध प्रस्ताव, पूँजीवाद द्वारा की जा रही पर्यावरण की तबाही पर प्रस्ताव तथा हिन्दी पत्रिका 'मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान', पंजाबी पत्रिका 'ललकार' एवं मराठी पत्रिका 'स्फुलिंग' को नौजवान भारत सभा की सहयोगी पत्रिकाओं के रूप में चयन सम्बन्धी प्रस्ताव शामिल थे। इसके अलावा देश तथा विदेश से अनेक संगठनों तथा बुद्धिजीवियों- सामाजिक कार्यकर्ताओं की ओर से नौभास के सम्मेलन के लिए भेजे गये शुभकामना सन्देशों को पढ़कर सुनाया गया।

दूसरे दिन के द्वितीय सत्र में नौभास की 17 सदस्यीय केन्द्रीय परिषद का चुनाव किया गया जिसने 7 सदस्यीय केन्द्रीय कार्यकारणी का चुनाव किया और फिर कार्यकारिणी द्वारा अपने पदाधिकारों का चुनाव किया गया। नौभास की हरियाणा इकाई के अरविन्द को अध्यक्ष चुना गया, दिल्ली इकाई के योगेश को उपाध्यक्ष, पंजाब इकाई के छिन्दरपाल को महासचिव तथा गाज़ियाबाद इकाई की श्वेता को कोषाध्यक्ष चुना गया।

अन्तिम दिन : खुला सत्र एवं रैली

सम्मेलन के अन्तिम दिन भगतसिंह के 107वें जन्मदिवस पर आयोजित खुले सत्र की शुरुआत शहीदों को श्रद्धांजलि से हुई। उसके बाद मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की पत्रिका 'आह्वान' के सम्पादक अभिनव ने अपना वक्तव्य रखा। उन्होंने अपनी बात में कहा कि सबको समान शिक्षा और रोज़गार के केन्द्रीय मुद्दे के अतिरिक्त आम मेहनतकश जनता के अन्य जनवादी अधिकारों मसलन स्वास्थ्य और आवास जैसे मुद्दों पर भी नौजवान भारत सभा को आन्दोलन छेड़ना चाहिए क्योंकि इन मुद्दों के ज़रिये भी पूँजीवादी व्यवस्था का भण्डाफोड़ किया जा सकता है।

तीसरे दिन के अन्तिम सत्र में विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया जिसमें बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर से आयी बिहार राज्य जनवादी सांस्कृतिक मोर्चा 'विकल्प' की टीम ने गुरुशरण सिंह द्वारा रचित नाटक 'इंक़लाब ज़िन्दाबाद' नाटक का मंचन किया और क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति की। इसके अलावा पंजाब की क्रान्तिकारी संगीत टोली 'दस्तक' एवं दिल्ली की सांस्कृतिक टोली 'विहान' ने भी क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति की। सम्मेलन का समापन शहीद-ए-आज़म भगतसिंह की याद में एक रैली से हुआ। युवाओं ने 'भगतसिंह से सपनों को साकार करो', 'भगतसिंह का आह्वान, जागो-जागो नौजवान', 'नौजवान जब भी जागा, इतिहास ने करवट बदली है' जैसे गगनभेदी नारों के साथ रैली का समापन हुआ।

– बिगुल संवाददाता

छात्र-युवा आन्दोलन में नया उभार और भविष्य के संकेत

आर्थिक संकटों के दुष्चक्र में फंसी पूँजीवादी व्यवस्था की हालत पतली हुई पड़ी है, एक संकट से निजात मिलता नहीं कि दूसरा उसके समक्ष प्रकट हो उठता है। ऐसे में दुनिया के तमाम देशों की पूँजीवादी सरकारें अपने मालिकों के मुनाफ़े को सुरक्षित रखने के लिए इन संकटों का सारा बोझ मेहनतकश आबादी पर डालने में लगी हुई हैं। जहाँ एक तरफ़ श्रम क़ानूनों को अधिक से अधिक लचीला बनाकर पूँजीपतियों द्वारा बेहद सस्ती दरों पर मज़दूर आबादी के शोषण का रास्ता साफ़ किया जा रहा है वहीं जनता की गाढ़ी कमायी से खड़े किये गये सार्वजनिक क्षेत्रों को एक-एक करके पूँजी के हवाले किया जा रहा है। निजीकरण-उदारीकरण की इन जन-विरोधी नीतियों से शिक्षा भी अछूती नहीं है। मुक्त बाज़ारीकरण के ज़रिये शिक्षा को पंसारी की दुकान में रखे साबुन, तेल की तरह ही एक माल बना दिया गया है। सरकारी शिक्षा संस्थानों में बेतहाशा फीस बढ़ोतरी और सार्वजनिक शिक्षा के मद में सरकारी खर्च में कटौती की वजह से शिक्षा आम घरों के बेटे-बेटियों से दूर होती जा रही है और अमीरों का विशेषाधिकार बनकर रह गयी है। ऊपर से कॉलेजों और विश्वविद्यालय कैंपसों में छात्रों के जनवादी अधिकारों को भी छीना जा रहा है और उनपर प्रशासन की तानाशाही लागू की जा रही है ताकि वह इन फैसलों के खिलाफ़ आवाज़ भी न उठा सकें।

शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण और उदारीकरण की इस अंधेरगर्दी के खिलाफ़ दुनिया भर में जुझारू छात्र आन्दोलन देखने में आ रहे हैं। निरंकुश पूँजीवादी सत्तायें इन आन्दोलनों को कुचलने में अपना पूरा ज़ोर लगा रही हैं, लेकिन फिर भी ये थमने का नाम नहीं ले रहे। लातिन अमेरिका के देश मेक्सिको का छात्र आन्दोलन इसी जुझारूपन से लबरेज़ है। वहाँ सरकार द्वारा प्रस्तावित शिक्षा के निजीकरण संबंधी क़ानूनी संशोधनों के विरोध में लाखों छात्र सड़कों पर हैं और पुलिस के दमन का मुकाबला कर रहे हैं। पिछले महीने के अन्त में शिक्षा के निजीकरण का विरोध कर रहे और त्लातेलोलको नरसंहार (ओलम्पिक खेलों से दस दिन पूर्व 2 अक्तूबर, 1968 को त्लातेलोलको में प्रदर्शन कर रहे निहत्थे छात्रों पर पुलिस और सेना द्वारा गोलियाँ चलायी गयीं और सैकड़ों छात्रों को मौत के घाट उतार दिया गया। अभी तक इस नरसंहार के दोषियों को सज़ा नहीं दी गयी।) को श्रद्धांजलि देने जाने के लिए संसाधन जुटा रहे छात्रों में से तीन को तो पुलिस ने मौके पर ही मार दिया और 43 छात्रों को पुलिस अपने साथ ले गयी। इन 43 छात्रों का अभी तक कोई अता-पता नहीं है। गेरेरो राज्य के इगुआला शहर में पुलिस को सामूहिक कब्रें मिलीं हैं, जिनमें जली हुई लाशें मिली हैं। ऐसा माना जा रहा है कि ये लाशें उन्हीं 43 छात्रों की हैं जिन्हें पुलिस ने अगवा किया था और बाद में वहाँ के गुण्डा गिरोह के साथ मिलकर इन्हें मौत के घाट उतार दिया। इन हत्याओं के विरोध में हज़ारों छात्र और नौजवान सड़कों पर हैं जिन्हें व्यापक नागरिक आबादी का भी समर्थन मिल रहा है। मेक्सिको में ही शिक्षा के निजीकरण के विरोध में और सरकारी शिक्षा संस्थानों में सुविधाओं की माँग को लेकर इंजीनीयरिंग के छात्र भी हज़ारों की संख्या में सरकार के ख़िलाफ़ प्रदर्शन कर रहे हैं।

लातिन अमेरिका के एक अन्य देश चिले में लगभग तीन लाख छात्र निशुल्क शिक्षा और सरकारी विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ाने की माँग को लेकर आन्दोलन कर रहे हैं। शान्तिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे इन छात्रों को बर्बर पुलिसिया दमन का सामना करना पड़ रहा है लेकिन इसके बावजूद वे अपनी माँगों को लेकर डटे हुए हैं। ऐसे ही छात्र आन्दोलन लातिन अमेरिका के एक अन्य देश कोस्टा रिका में भी देखने को मिल रहे हैं।

यूरोप में भी इटली, जर्मनी, अलबानिया, स्पेन, ग्रीस, आयरलैण्ड और नीदरलैण्ड में छात्र और अध्यापक शिक्षा के बाज़ारीकरण का विरोध कर रहे हैं। इटली के कई प्रमुख शहरों में सरकार द्वारा प्रस्तावित जनविरोधी नीतियों जिनमें शिक्षा के बाज़ारीकरण, जन-सुविधाओं में कटौती और श्रम क़ानूनों को लचीला बनाने जैसे कदम शामिल हैं, के विरोध में 80,000 छात्र और नौजवान सरकार से लोहा ले रहे हैं। आने वाले दिनों में इन प्रदर्शनों में मज़दूर आबादी के शामिल होने की भी उम्मीद है।

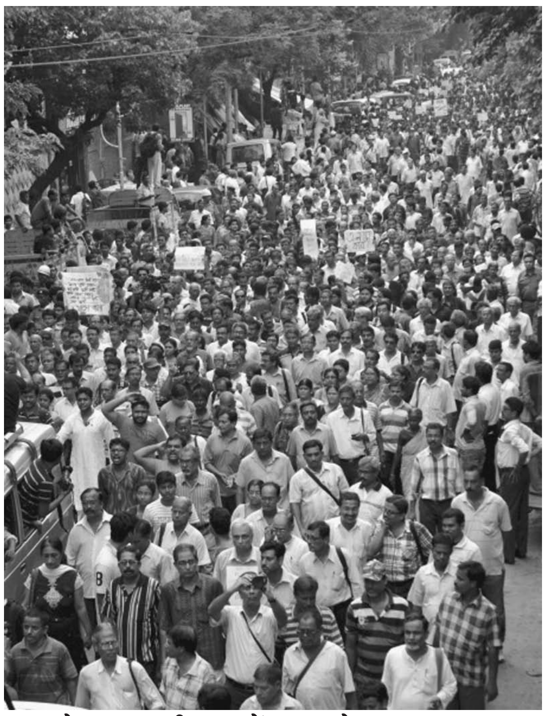

कोलकाता की सड़कों पर उतरे 1 लाख छात्र

एशिया भी छात्र आन्दोलनों के नये गढ़ के रूप में उभर रहा है। हाल ही में श्रीलंका के सबारागामुवा विश्वविद्यालय में छात्रों द्वारा शिक्षा मंत्री के आगमन पर उनकी शिक्षा के बाज़ारीकरण की नीतियों के विरोध में एक जुझारू प्रदर्शन किया गया। प्रदर्शन के दौरान गुस्साए मंत्री की शह पर पुलिस ने छात्रों पर पानी की बौछारें कीं, उनपर लाठीचार्ज किया और कई छात्रों के खिलाफ़ झूठे केस भी दर्ज किये। हमारे देश में भी कई सालों के सन्नाटे के बाद छात्र-युवा आन्दोलन में नयी सुगबुगाहटें सुनायी दीं। हाल ही में कोलकाता के जादवपुर विश्वविद्यालय में छात्रा से छेड़खानी करने वालों के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने को लेकर उदासीनता दिखा रहे कुलपति और अन्य प्रशासनिक अधिकारियों के ख़िलाफ़ प्रदर्शन कर रहे छात्रों पर पुलिस एवं गुण्डों द्वारा भोर में दो बजे हमला किया गया। हमले के दौरान पुरुष सिपाहियों द्वारा छात्राओं के साथ छेड़खानी की गयी, उन्हें बालों से घसीटा गया, छात्रों को बुरी तरह पीटा गया और कइयों को गिरफ़्तार किया गया। इस हमले के ख़िलाफ़ हज़ारों की संख्या में छात्र और नौजवान सड़कों पर हैं जो इस हमले के दोषियों को सज़ा देने और विश्वविद्यालय के कुलपति के इस्तीफ़े की माँग कर रहे हैं। दूसरी तरफ़ हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय में बेतहाशा फीस बढ़ोतरी के ख़िलाफ़ छात्र जुझारू आन्दोलन लड़ रहे हैं। ग़ौरतलब है कि हाल ही में हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय में 1000 से लेकर 2000 फीसदी तक फीस बढ़ोतरी की गयी है जिसे लेकर आम घरों के छात्रों में काफ़ी असन्तोष है। जब छात्रों ने विश्वविद्यालय के कुलपति से इस फैसले के बारे में उनका स्पष्टीकरण जानना चाहा तो कुलपति का साफ़ कहना था कि अगर फीस नहीं भर सकते तो विश्वविद्यालय छोड़ दो। इसके ख़िलाफ़ जब छात्रों ने आन्दोलन का रास्ता अख़्तियार किया तो पुलिस ने उनका बर्बरतापूर्वक दमन किया, करीब 2500 छात्रों पर झूठे केस दर्ज कर दिये, विश्वविद्यालय परिसर में धारा 144 लगा दी। लेकिन पुलिस के इन हथकण्डों से छात्र झुके नहीं बल्कि धारा 144 के बावजूद धरना स्थल पर जमकर पुलिस के दमन का मुकाबला कर रहे हैं। इसी प्रकार हाल ही में गुड़गांव के गवर्नमेंट गर्ल्स कॉलेज में परीक्षाओं की उत्तरपुस्तिकाओं के मूल्यांकन में घपलेबाज़ी के खिलाफ़ छात्राओं ने जुझारू प्रदर्शन किया। महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक से सम्बद्ध इस कॉलेज में बाकी कॉलेजों की ही तरह उत्तरपुस्तिकाओं के मूल्यांकन का काम ठेका पर कुछ कम्पनियों को दे रखा था। कॉलेज के अध्यापकों और कम्पनी ने छात्राओं को जानबूझकर फेल करके धन उगाही का ये रैकेट लम्बे समय से चला रखा था। ये प्रदर्शन तब शुरू हुआ जब सेमेस्टर परीक्षा में 356 में 324 छात्राओं को जानबूझकर फेल कर दिया गया। इस प्रदर्शन की अगुआयी पिंकी चौहान नामक छात्रा कर रही थी, जिसे कॉलेज के प्राध्यापकों ने आत्मदाह करने पर मज़बूर कर दिया जिसके बाद उसका शरीर बुरी तरह जल गया। 14 दिनों तक ज़िन्दगी और मौत से जूझने के बाद पिंकी ने दम तौड़ दिया। इस घटना में इन्साफ़ के लिए कुछ छात्र अभी भी आन्दोलन कर रहे हैं। शिक्षा का बाज़ारीकरण जहाँ एक तरफ़ आम घरों के बेटे-बेटियों को शिक्षा से महरूम कर रहा है वहीं यह उनकी जान का दुश्मन भी बनता जा रहा है।

ऐसे कितने ही छात्र-युवा आन्दोलन आज दुनिया भर में देखने को मिल रहे हैं। ये सब अपने-अपने देश के शासकों को यही चेतावनी दे रहे हैं कि हम अपने अधिकारों पर हो रहे हमलों को चुपचाप बर्दाश्त नहीं करेंगे। जैसे-जैसे शिक्षा के क्षेत्र में बाज़ारीकरण और निजीकरण को लागू किया जायेगा, वैसे-वैसे आम घरों के बेटे-बेटियों के लिए अच्छी शिक्षा प्राप्त कर पाना मुश्किल होता जायेगा जिसका नतीजा छात्रों में बढ़ते असन्तोष के रूप में सामने आयेगा और ज़्यादा से ज़्यादा छात्र इसके विरोध में सड़कों पर उतरेंगे। इसके साथ ही इस विरोध को कुचलने के लिए सत्ता के दमन का पहिया भी तेज़ होता जायेगा। शिक्षा के बाज़ारीकरण के विरोध की इस लड़ाई को छात्र सिर्फ़ अपने दम पर नहीं जीत सकते। इसके लिए उन्हें अपनी लड़ाई को मज़दूर वर्ग की पूँजीवाद विरोधी लड़ाई के साथ जोड़ना होगा।

– अखिल कुमार

मज़दूरी की व्यवस्था में मज़दूर के शोषण का रहस्य

(पेज 13 से आगे)

दूसरे से आगे बढ़ रही हैं, मानव-श्रम की उत्पादनशीलता, जो दिन-ब-दिन इतनी तेज़ी के साथ बढ़ रही है कि पहले सोचा भी नहीं जा सकता था, अन्त में जाकर एक ऐसा टकराव पैदा करती हैं, जिसके कारण आज की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का विनाश निश्चित है। एक ओर, अकूत धन-सम्पत्ति और मालों की इफ़रात है, जिनको ख़रीदार ख़रीद नहीं पाते; दूसरी ओर, समाज का अधिकांश भाग है, जो सर्वहारा हो गया है, उजरती मज़दूर बन गया है और जो ठीक इसीलिए इन इफ़रात मालों को हस्तगत करने में असमर्थ है। समाज के एक छोटे-से अत्यधिक धनी वर्ग और उजरती मज़दूरों के एक विशाल सम्पत्तिविहीन वर्ग में बँट जाने के परिणामस्वरूप उसका खुद अपनी इफ़रात से गला घुटने लगता है, जबकि समाज के सदस्यों की विशाल बहुसंख्या घोर अभाव से प्राय: अरक्षित है या नितान्त अरक्षित तक है। यह वस्तुस्थिति अधिकाधिक बेतुकी और अधिकाधिक अनावश्यक होती जाती है। इस स्थिति का अन्त अपरिहार्य है(उसका अन्त सम्भव है। एक ऐसी नयी सामाजिक व्यवस्था सम्भव है, जिसमें वर्त्तमान वर्ग-भेद लुप्त हो जायेंगे और जिसमें–शायद एक छोटे-से संक्रमण-काल के बाद, जिसमें कुछ अभाव सहन करना पड़ेगा, लेकिन जो नैतिक दृष्टि से बड़ा मूल्यवान काल होगा–अभी से मौजूद अपार उत्पादक-शक्तियों का योजनाब) रूप से उपयोग तथा विस्तार करके और सभी के लिए काम करना अनिवार्य बनाकर, जीवन-निर्वाह के साधनों को, जीवन के उपभोग के साधनों को तथा मनुष्य की सभी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों के विकास और प्रयोग के साधनों को समाज के सभी सदस्यों के लिए समान मात्रा में और अधिकाधिक पूर्ण रूप से सुलभ बना दिया जायेगा।

अमानवीय शोषण-उत्पीड़न और अपमान के शिकार प्रवासी मज़दूर

(पेज 12 से आगे)

आदि देशों में सीमा पार करने को ज़्यादा से ज़्यादा ख़तरनाक बनाया जा रहा है। यूनान में अगस्त 2012 में ग़ैर-क़ानूनी प्रवासियों की खोज का एक अभियान शुरू किया गया और 72 घंटों में 7000 ग़ैर क़ानूनी प्रवासियों का ढूँढ निकाला गया। निश्चित ही आप्रवासन जितना ज़्यादा सख़्त होगा आम मेहनतकश आबादी के लिए रोज़गार तलाशना उतना ही कठिन होगा और रोज़गार मुहैया करने वाले अमीर देशों तक पहुँचना उतना ही मुश्किल। आईओएम की रिपोर्ट के अनुसार पूरे विश्व में ग़ैर-क़ानूनी रूप से सीमा पार करते हुए प्रति दिन 8 लोगों की मौत हो जाती है।

निश्चित ही प्रवासी मज़दूरों की जिन्दगी कहीं भी आसान नहीं। कठिन जीवन स्थितियाँ उनके स्वागत में खड़ी रहती हैं। लेकिन प्रवासी मज़दूरों का सबसे सकारात्मक पहलू होता है उनका बन्धन मुक्त होना। मार्क्स के अनुसार ये प्रवासी मज़दूर सर्वहारा की उन्नत जमाते होती हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि ये पूँजीवाद की कब्र खोदने वाले सबसे मजबूत हाथों में से एक होते हैं।

हर देश में अमानवीय शोषण–उत्पीड़न और अपमान के शिकार हैं प्रवासी मज़दूर

– लता

जब घर पर कुछ नहीं बचता सिवाय भूख, ग़रीबी, बीमारी, तंगहाली और बेरोज़गारी के, तो बेबस होकर मेहनतकश आबादी घर, गाँव, शहर और अपने लोगों को छोड़कर रोज़गार की तलाश में महानगरों या औद्योगिक क्षेत्रों की ओर पलायन करती है। कुछ लोग ज़्यादा बेहतर भविष्य की तलाश में दूसरे देश चले जाते हैं। देश हो या विदेश, प्रवासी मज़दूरों की ज़िन्दगी कहीं भी अच्छी नहीं होती। पराये मुल्क या पराये माहौल में रह रही इस मेहनतकश आबादी को अपने घर-परिवार की हालत, जिम्मेदारियों का बोझ हर पल सालता रहता है। जैसा भी काम मिलता है उसे करने के सिवा इनके पास दूसरा कोई विकल्प नहीं बचता। निश्चित ही इनसे काम कराने वालों को भी यह बात पता होती है। इसलिए ये प्रवासी मज़दूर भयंकर शोषण और उत्पीड़न का शिकार होते हैं। कई मामलों में तो दलाल, एजेन्ट या तस्कर इन्हें फुसलाकर, बेहतर ज़िन्दगी के सपने दिखाकर दूर दूसरे शहर या देश ले जाते हैं और फिर ऐसे बेरहम मालिकों के हवाले कर देते हैं जो फैक्ट्रियों में, होटलों में या घरों में इन्हें गुलामों की तरह खटाते हैं, जानवरों से भी बदतर हालत में रखते हैं। बहुत-सी औरतों को नर्स या आया बनने के सपने दिखाकर ले जाया जाता है पर उन्हें वेश्यावृत्ति में धकेल दिया जाता है। प्रवासी मज़दूरों से बारह-बारह, सोलह-सोलह घंटे काम कराना आम बात है, सुपरवाइज़रों की गन्दी गालियाँ, छोटी-छोटी बातों पर पगार से पैसे काट लेना, बीमार होने पर देखभाल और इलाज तो दूर सीधे नौकरी से निकाल दिया जाना आम बात है। जोखिम भरे कारख़ानों या वर्कशॉपों में बिना किसी सुरक्षा उपकरण के ख़स्ताहाल मशीनों पर लम्बे समय तक काम कराया जाता है, जिसके चलते मज़दूरों के साथ दुर्घटना होना मानो उनके काम का हिस्सा बन जाता है। कोई भयंकर दुर्घटना होने पर मुआवज़ा भी नहीं मिलता और कई बार तो मौत हो जाने पर लाश तक ग़ायब कर दी जाती है।

प्रवास, यानी एक जगह से दूसरी जगह जाकर रहना, काम करना, हमेशा से मानव इतिहास का हिस्सा रहा है। लेकिन मध्ययुगीन समाज की तुलना में पूँजीवादी समाज में प्रवास का चरित्र भिन्न होता है। आज जो प्रवास हो रहा है वह ज़मींदारों के भय से बँधुआ मज़दूरों का प्रवास या अमानवीय सामाजिक रीति-रिवाजों से बच निकलने के लिए किया गया प्रवास नहीं है। आज गाँवों में पूँजी की मार से ग़रीब किसान अपनी जगह-ज़मीन से उजड़ रहे हैं और जीने के लिए किसी भी काम की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। देश के पिछड़े और ग़रीब हिस्सों से महानगरों की ओर प्रवास एक आम बात है। एजेन्ट और दलाल इन ग़रीब और पिछड़े हिस्सों में सबसे ज़्यादा सक्रिय होते हैं। इसके अलावा पूरी दुनिया में पिछड़े हुए देशों से रोज़गार की तलाश में ग़रीब लोग अमीर मुल्कों में जाकर खट रहे हैं। आज मेहनतकश आबादी मुक्त है अपनी हड्डियाँ घिसवाने, अपना ख़ून निचुड़वाने को और अपना माँस गलाने को। वह किसी ज़मींदार से बँधी नहीं है। वह आज़ाद है अपना श्रम बेचने को।

विदेशों में काम करने वाले प्रवासी मज़दूर काम और जीने की तमाम बदतर परिस्थितियों के साथ ही कुछ दूसरी परेशानियों का भी सामना करते हैं, जैसे भाषा और संस्कृति का भेद। खाड़ी देशों में भारत, पाकिस्तान और नेपाल से गये प्रवासी मज़दूर और चीन से यूरोपीय देशों में गए प्रवासी मज़दूरों को इसका सामना करना पड़ता है साथ ही रंगभेद संबंधी अपमान और हिंसा भी झेलनी पड़ती है। विदेशों में भी प्रवासी मज़दूरों की दो श्रेणियाँ हैं – क़ानूनी प्रवासी मज़दूर और ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी मज़दूर। ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी मज़दूरों की स्थिति ज़्यादा जोखिमभरी और ख़तरनाक होती है क्योंकि किसी भी अधिकार का दावा करने के लिए इनके पास कोई ज़मीन नहीं होती और तो और ये हमेशा पकड़े जाने के भय में जीते हैं जिसका फ़ायदा इनसे काम कराने वाले उठाते हैं।

प्रवासन के लिए अन्तरराष्ट्रीय संगठन (आईओएम) की एक रिपोर्ट के अनुसार अभी पूरे विश्व में प्रवासियों की कुल संख्या 23 करोड़ 20 लाख है। निश्चित ही प्रवासियों की वास्तविक संख्या इससे कहीं ज़्यादा होगी। यदि इसमें ग़ैर-क़ानूनी प्रवासियों को शामिल किया जाये तब तो यह संख्या बहुत अधिक होगी।

हम इस लेख में आम मेहनतकश आबादी के प्रवास की बात कर रहे हैं। खाते-पीते मध्यवर्ग और उच्च मध्य वर्ग के जो लोग अपना देश छोड़कर दूसरे देशों में काम करने जाते हैं उनके लिए यह वैसा ही है जैसेकि अगर कोई तीन सितारा होटल से सन्तुष्ट नहीं हैं तो पाँच सितारा होटल जाना चाहता है। लेकिन आम मेहनतकश आबादी के लिए प्रवास के बुनियादी कारण होते हैं आर्थिक तंगी, ग़रीबी, बीमारी, बेरोज़गारी आदि। इसके अलावा ऐसे भी देशों से लोग भारी तादाद में प्रवास करते हैं जहाँ राजनीतिक अस्थिरता लगातार बनी रहती है। लम्बी राजनीतिक उथल-पुथल और युद्ध की वजह से उद्योग-धन्धे उजड़ जाते हैं। फिलिस्तीन, सीरिया, तुर्की, अफ़्रीकी देश सोमालिया, इरीट्रिया आदि इनमें शामिल हैं। इन देशों की ग़रीब आबादी मिस्र के तट से भूमध्यसागर को ग़ैरक़ानूनी रूप से पारकर यूरोप पहुँचने का प्रयास करती है। यूरोप के लगातार सख़्त होते आप्रवासन क़ानूनों के कारण प्रवासी मज़दूरों के लिए बड़ी संख्या में यूरोप में क़ानूनी तौर पर प्रवेश कर पाना बेहद कठिन है। मजबूरन दूभर आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों की मार झेल रही जनता को जान जोख़िम में डाल कर ख़तरनाक समुद्री रास्तों से यूरोप के देशों में पहुँचने का प्रयास करना पड़ता है। ग्यारह बार भूमध्यसागर के रास्ते यूरोप जाने का प्रयास कर चुके सीरियाई मज़दूर मोताज ने अपने जैसे दूसरे मज़दूरों की हालत को एक कहावत से सही बयान किया है – "आगे समुद्र है और पीछे दुश्मन"।

आईओएम की एक रिपोर्ट के अनुसार भूमध्यसागर के रास्ते यूरोप पहुँचने के प्रयास में वर्ष 2014 में सितम्बर माह तक 3000 मौतें हो चुकी हैं। पिछले 14 सालों में ग़ैर-क़ानूनी प्रवास के विभिन्न रास्तों (जैसे भूमध्यसागर, अमेरिका-मेक्सिको सीमा, ईरान-अफगानिस्तान सीमा आदि) पर 40,000 प्रवासी मज़दूरों की जानें जा चुकी हैं जिनमें औरतें और बच्चे भी शामिल हैं। अकेले 22,000 लोगों की मौत यूरोप के रास्ते में हो चुकी है। यदि सभी रास्तों पर होने वाली मौतें देखी जाय तो इस साल सितम्बर महीने तक 4,077 जानें जा चुकी हैं। वास्तविक संख्या इससे कहीं ज़्यादा ही होगी इसका अंदाजा लगा पाना मुश्किल नहीं है।

एक बात तो तय है कि गुलामों के व्यापार के युग से आज के युग में मज़दूरों की हालत में बस इतना परिवर्तन आया है कि पहले लोगों को जबरन गुलाम बनाया जाता था और आज पूँजीवादी व्यवस्था ने ऐसी परिस्थितियाँ तैयार कर दी हैं कि लोग ख़ुद गुलामों जैसी ज़िन्दगी चुन रहे हैं क्योंकि उनके पास दूसरा कोई विकल्प ही नहीं होता। मार्क्स ने सही कहा था कि पूँजीवादी व्यवस्था में सर्वहारा आज़ाद है सिर्फ़ अपनी श्रमशक्ति बेचने के लिए!

सीरिया, तुर्की, लेबनान, अफ़्रीकी देशों आदि से यूरोप में होने वाला प्रवास

सीरिया, तुर्की, फ़िलिस्तीन, लेबनान, सब-सहारा अफ़्रीका के देशों से बड़ी संख्या में मज़दूर आबादी यूरोप जाती है। इसमें ग़ैर-क़ानूनी प्रवासियों की संख्या बहुत अधिक होती है। इंग्लैण्ड में ग़ैर-क़ानूनी प्रवासियों की संख्या 430,000 है। कैनरी द्वीप पर सब-सहारा देशों से आने वाले ग़ैर-क़ानूनी प्रवासियों की संख्या वर्ष 2013 में 31,000 हज़ार थी जो वर्ष 2005 से छह गुना अधिक है। 2004-5 के बाद से सभी यूरोपीय देशों ने अपने आप्रवासन क़ानूनों को ज़्यादा सख़्त बनाया है। वर्ष 2012 में यूनान की सरकार ने ग़ैर-क़ानूनी प्रवासियों को पकड़ने का अभियान चलाया जिसमें 72 घण्टों के अन्दर 7,000 लोगों को गिरफ़्तार किया गया था।

यूरोप में ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी मज़दूरों की संख्या हर साल बढ़ रही है। ये मज़दूर दलालों और बिचौलियों को रास्ता तय करने के लिए बड़ी रक़म देते हैं। फिर ये मज़दूर कई बसें बदलकर मिस्र के किसी समुद्र तट पर पहुँचते हैं जहाँ से इन्हें कैनरी द्वीप या माल्टा या इटली के किसी तट तक जाने के लिए छोटे-छोटे जहाज़ों और नावों में ठूँस-ठूँसकर भर दिया जाता है। ये छोटी नावें या जहाज़ अक्सर समुद्र में इतनी लम्बी यात्रा करने के उपयुक्त नहीं होते और अक्सर ही ऐसे जहाज़ और नावें डूब जाती हैं जिसकी वजह से ज़्यादातर यात्रियों की मौत हो जाती है। इसके अलावा कई यात्रियों की घुटन से भी मौत हो जाती है। पिछले साल अक्टूबर में इटली में लाम्पेदूसा द्वीप के क़रीब नाव डूबने से 366 प्रवासी मज़दूर मारे गये थे। उसी वर्ष 15 सितम्बर को लाम्पेदूसा द्वीप के ही करीब प्रवासी मज़दूरों से भरे एक जहाज को तस्करों ने जबरन डुबो दिया। अनुमान है कि मरने वालों की संख्या 500 से ज़्यादा होगी। मरने वालों में 100 बच्चे भी थे। उसी दिन एक और नाव डूबने की घटना में 200 प्रवासी मज़दूर मारे गए। सवाल ये है कि मज़दूर आख़िर इतने जोख़िम भरे, ख़तरनाक समुद्री रास्ते पर यात्रा करने को मजबूर ही क्यों हैं? क्या वजह है कि अपना देश छोड़कर अपरिचित भाषा और संस्कृति वाले अमीर यूरोपीय देशों में जाना चाहते हैं? इस दुर्घटना में बचने वाले एक नौजवान मज़दूर ने बताया कि वह यूरोप जाना चाहता था ताकि वह पैसे कमाकर अपने पिता की दिल की बीमारी के इलाज के लिए पैसे घर भेज सके।

यूरोप पहुँचने के बाद यह मज़दूर आबादी वे सभी कठिन मेहनत वाले काम आती है जिसे यूरोपीय मज़दूर या तो करना नहीं चाहते या फिर यूरोपीय मज़दूरों को इसके लिए मज़दूरी बहुत अधिक देनी पड़ती है। कृषि उद्योग में कमरतोड़ मेहनत हो या कारख़ानों का सबसे उबाऊ काम इनके हिस्से आता है। ये मज़दूर सोलह-सोलह घण्टे की पाली में काम करते हैं और कई बार तो ये लगातार 24 घण्टे सबसे मुश्किल और खराब परिस्थितियों वाले काम करते हैं। इनकी मज़दूरी यूरोपीय मज़दूरों की न्यूनतम मज़दूरी की तुलना में नगण्य होती है। इतना ही नहीं इन्हें पैसे समय पर नहीं मिलते और जो कुछ मिलता भी है उसका बड़ा हिस्सा दलालों के कमीशन, कमरे के किराये और भोजन में चला जाता है।

ऑस्ट्रिया, जर्मनी, इंग्लैण्ड आदि देशों में तुर्क, कुर्द और सीरियाई मज़दूर आबादी अक्सर ही घृणा, अपमान और नस्लभेद का शिकार होती है। इन्हें बढ़ते अपराधों, नशीले पदार्थों की तस्करी आदि के लिए वहाँ की मूल आबादी जिम्मेदार मानती है। हाल ही में नव-नाज़ी गिरोहों के उभार से इन पर जानलेवा हमले भी बढ़े हैं। यह आबादी न केवल निकृष्टतम काम सर्वाधिक असुरक्षित माहौल में करती है बल्कि सामाजिक अलगाव, अपमान और हिंसा का भी शिकार होती है। यह है पश्चिमी पूँजीवादी देशों के चमकते-दमकते स्वर्ग के तलघर की कहानी (हालाँकि लम्बे समय से कायम आर्थिक मन्दी ने इस स्वर्ग की भी नींव हिलाकर रख दी है)।

यूरोप में चीनी प्रवासी मज़दूर

चीन में मज़दूरों का राज आज पूँजी के बर्बर राज में तब्दील हो चुका है। कम्युनिस्ट पार्टी के नाम पर वहाँ शासन कर रहे पूँजीवादी हुक्मरानों ने माओ के देश में मज़दूरों और ग़रीब किसानों की ऐसी हालत कर दी है कि बड़ी संख्या में वहाँ से मज़दूर यूरोपीय देशों में रोज़गार की तलाश में जा रहे हैं। ये क़ानूनी और ग़ैर-क़ानूनी दोनो श्रेणी के होते हैं। एजेंट अक्सर इन मज़दूरों को पर्यटक वीज़ा दिलाते हैं। यूरोप पहुँचकर इन्हें फर्जी पहचान पत्र दिया जाता है। ये मज़दूर वीज़ा, पासपोर्ट और टिकट के खर्चे की रकम लम्बे समय तक अपनी मज़दूरी से चुकाते रहते हैं। अक्सर दलाल या एजेंट इनके पासपोर्ट और वीज़ा ज़ब्त कर लेते हैं। इसकी वजह से मज़दूर इन एजेंट या दलालों से बँध जाते हैं जो उनका जमकर शोषण करते हैं। पर्यटक वीज़ा पर आये मज़दूर यूरोप के देशों में गुमनाम होते हैं।

कुछ वर्ष पहले इस तरह के 36 ग़ैर-क़ानूनी चीनी मज़दूरों का एक समूह मोरकम खाड़ी तट पर कोकल (एक तरह का समुद्री भोज्य पदार्थ) एकत्र करते समय समुद्री लहरों की चपेट में आकर बह गया। मोरकम खाड़ी अपने प्रबल ज्वार-भाटा के लिए बदनाम है। देर रात मज़दूरों के एजेंट इन्हें दलदली तट पर कोकल इकट्ठा करने के लिए छोड़ जाते थे और स्वयं कसीनो, पब आदि में मस्ती करते थे। स्थानीय लोगों ने उस रात मज़दूरों को आगाह करने का प्रयास किया था लेकिन भाषा नहीं समझ आने की वजह से ये मज़दूर कुछ भी समझ नहीं पाये। ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी मज़दूरों के काम करने की अमानवीय परिस्थितियों के उजागर

(पेज 11 पर जारी)

अमानवीय शोषण-उत्पीड़न और अपमान के शिकार प्रवासी मज़दूर

(पेज 11 से आगे)

होने के बाद इंग्लैण्ड की सरकार ने आप्रवासन क़ानूनों और नीतियों को और सख़्त कर दिया। प्रवासी मज़दूरों के लिए अंग्रेज़ी भाषा की परीक्षा पास करना अनिवार्य कर दिया गया। लेकिन इन क़ानूनी उपायों से मज़दूरों की स्थिति में कोई ख़ास परिवर्तन नहीं आया है उल्टे दलालों और तस्कर गिरोहों के हाथ ज़रूर मज़बूत हो गए। चीनी प्रवासी मज़दूरों का बड़ा हिस्सा मज़दूरी के अन्य कामों के अलावा रेस्तरां और होटलों में काम करता है। यहाँ काम करने की बुरी परिस्थितियों, कम मज़दूरी और काम के लम्बे समय के अलावा कदम-कदम पर उनका अपमान होता है। आप्रवासन नीतियों के सख़्त होने की वज़ह से अब ये प्रवासी मज़दूर पूरी तरह दलालों और गिरोहों की गिरफ़्त में आ जाते हैं।

खाड़ी देशों में प्रवासी मज़दूर

"रहने में थोड़ा कष्ट होगा लेकिन पैसे तो बेशुमार मिलेंगे!" यह सोचकर 1970 के बाद तेल उत्पादन में आये उछाल के समय दक्षिण एशिया, अफ्रीका और अरब देशों से प्रवासी मज़दूरों का बड़ी मात्रा में खाड़ी देशों में आने का सिलसिला शुरू हो गया। आज खाड़ी देशों में 2 से 3 करोड़ के बीच प्रवासी मज़दूर हैं जिनमें भारत, पाकिस्तान और नेपाल से आये मज़दूरों की संख्या सबसे ज़्यादा है। खाड़ी देश मज़दूरों के साथ अपने दुर्व्यवहार के लिए बदनाम हैं। इसके बावजूद यूरोपीय संस्थान और कम्पनियाँ इन्हें अपनी फ्रेन्चाइज़ी दे रही हैं और कतर फुटबॉल विश्व कप 2022 की मेज़बानी कर रहा है। मानवाधिकरों का शोर मचाने वाले पश्चिमी देशों को इन मज़दूरों के मानवाधिकारों की परवाह नहीं है!

भारत, नेपाल तथा अन्य देशों से आये प्रवासी मज़दूर खाली जेब, कर्ज़ और घर पर छोड़ आयी ढेरों ज़िम्मेदारियों के साथ खाड़ी देशों की ज़मीन पर कदम रखते हैं। वहाँ पहुँचते ही उनके वीज़ा और पासपोर्ट दलाल जब्त कर लेते हैं। उन्हें आकर्षक नौकरियों का जो सपना दिखाकर लाया जाता है वह यहाँ पहुँचते ही टूट जाता है। इसके उलट उन्हें घण्टों कमरतोड़ मेहनत करनी पड़ती है और बदले में मिलती है बेहद कम मज़दूरी। कइयों को तो बढ़िया नौकरी का सपना दिखाकर ले जाया जाता है और उनसे ऊँट या भेड़ें चराने का काम कराया जाता है। उनके चारों ओर दूर-दूर तक वीरान रेगिस्तान पसरा होता है। बातें करने के लिए एक इंसान नहीं होता। न ढंग से खाना मिलता है और न ही नहाने की इजाज़त। इस त्रासद स्थिति को बहरीन में रहने वाले एक मलयाली उपन्यासकार बेनियामिन ने अपने उपन्यास 'अदुजीवितम' (भेड़ के दिन) में दर्शाया है।

अबु धाबी तट से 500 मीटर की दूरी पर स्थित एक टापू है जिस पर सिवा रेत और कछुओं के कुछ नहीं होता था, लेकिन मानव श्रम आज उसे विश्व के विशालतम बौद्धिक, सांस्कृतिक और ऐश्वर्य के केन्द्र में बदलने में लगा हुआ है। यह विश्व की सबसे विशाल निर्माण योजना है जिसकी लागत 27 बिलियन डॉलर है और जिसे 2020 तक पूरा किया जाना है। इसमें अमेरिका के प्रसिद्ध गुगेनहाइम और फ्रांस के लूव्र संग्रहालय और न्यूयार्क विश्वविद्यालय की शाखाओं का निर्माण शामिल है। इस टापू का नाम 'सादियात द्वीप' रखा गया है जिसका अरबी भाषा में अर्थ होता है 'खुशी का द्वीप', हालाँकि इसके निर्माण में अब तक न जाने कितने मज़दूरों की जान जा चुकी है, और कितने अपाहिज और बीमार हुए हैं इसकी कोई गिनती ही नहीं है। यहाँ श्रम क़ानूनों का उल्लंघन तो आम बात है, पिछली बार हड़ताल करने पर मज़दूरों को भयंकर दमन और उत्पीड़न झेलना पड़ा। तीन महीने की छान-बीन के बाद निरीक्षकों ने पाया कि यहाँ रोज़गार नियुक्ति की एकतरफा व्यवस्था है, कई मज़दूरों को डराया, धमकाया और पीटा गया है, हड़ताल तोड़ने का प्रयास किया गया, दंगे उकसाये गये और हड़ताली मज़दूरों को पहले बिना मेहनताना तीन-तीन महीनों तक काम करवाया गया और फिर वापस उनके देश भेज दिया गया। एक मज़दूर, मोहम्मद आरिफ का एक पैर ऐशो-आराम से भरपूर एक विला बनाने के दौरान कट गया था। एक साल तक उसे लेबर कैम्प में 10वीं मंजिल पर रहने को मजबूर किया गया जिसे वह बैसाखी के सहारे चढ़ता-उतरता और एक साल बाद उसके नकली पैर भी उसके नियोक्ता ने नहीं लगवाये बल्कि किसी ख़ैराती संस्थान ने दिलवाये। लेबर कैम्प में छोटे-छोटे कमरों में 10-10 मज़दूरों को ठूँस दिया जाता है जिसमें खिड़कियाँ भी नहीं होती। ये लेबर कैम्प भी शहर से दूर होते हैं जहाँ पूरे शहर का कचरा डाला जाता है और एक ओर सीवर ट्रीटमेंट प्लान्ट और एक ओर उद्योगों के दूषित जल का जलाशय है। हर रोज़ मानव मल से लदी असहय बदबू से भरी कई लॉरियाँ आती रहती हैं और जलाशय का दूषित पानी चारों ओर फैला रहता है। यह है सच्चाई जबकि अबु धाबी के टूरिज़्म डेवलपमेंट एण्ड इन्वेस्टमेंट कम्पनी के प्रमुख विकास अधिकारी ने बयान दिया था कि लेबर कैम्प में मज़दूरों की सुविधा का हर इन्तज़ाम है, बस रूम सर्विस, यानी कमरे में नाश्ता-खाना पहुँचाने की कमी है। सांस्कृतिक केन्द्र को बना रहे मज़दूरों की बुरी हालत को देखकर कलाकारों के एक अन्तरराष्ट्रीय गठबंधन ने नवम्बर 2013 में एक साल लम्बे विरोध की शुरुआत की है। अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन और कई अन्य संगठनों ने भी मज़दूरों की हालत में सुधार की माँग की है। लेकिन इनकी माँगें जितनी खोखली होती हैं उसका प्रभाव भी उतना ही खोखला होता है। आज भी मज़दूरों की स्थिति में कोई ख़ास फ़र्क नहीं आया है।

संयुक्त अरब अमीरात (यू.ए.ई.) में हड़ताल करना ग़ैर-क़ानूनी है फिर भी बेहद ख़राब हालात से तंग आकर पिछले दिनों मज़दूरों ने वहाँ हड़ताल की। मज़दूरों को बेहद कम मज़दूरी पर 12 से 16 घण्टे की शिफ़्ट करनी पड़ती है। इन्हें भर्ती शुल्क के नाम पर नियोक्ता को मोटी रक़म देनी पड़ती है जिसकी कटौती नौ महीने से ज़्यादा तक उनकी पगार से होती रहती है। रहने और खाने की स्थिति बेहद ख़स्ताहाल है।

कतर में 2022 के फुटबॉल विश्व कप की तैयारी और प्रवासी मज़दूरों का भयंकर शोषण

2022 में कतर में होने वाले फुटबॉल विश्व कप के लिए कतर को पूरा नया बनाया जा रहा है। 2010 में मेज़बानी हासिल करने के बाद कतर ने 14 लाख प्रवासी मज़दूरों को इस काम में लगाया है। अभी कतर में प्रवासी मज़दूरों की आबादी कुल आबादी का 94 प्रतिशत है। यह 94 प्रतिशत आबादी बेहद कम मज़दूरी पर नारकीय स्थिति में जी रही है। दूसरी ओर, बाकी की 6 प्रतिशत आबादी विश्व के किसी भी देश से ज़्यादा प्रति व्यक्ति आय हासिल कर रही है। जीने की कठिन परिस्थितियाँ, काम के लम्बे घण्टे, कम मज़दूरी, स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई सुरक्षा नहीं, ऐसी हालत में मज़दूर काम कर रहे हैं। इनमें सबसे गम्भीर है भर्ती की व्यवस्था जिसे कफाला कहते हैं। यह व्यवस्था मज़दूर को उसके नियोक्ता से बाँध देती है। नियोक्ता पासपोर्ट और वीज़ा जब्त कर लेता है और मज़दूर जब तक कतर में है उसी नियोक्ता के मातहत काम करने को मजबूर होता है। इस प्रकार मज़दूरों की स्थिति बँधुआ मज़दूरों जैसी हो जाती है। वह देश भी तभी छोड़ सकता है जब उसका नियोक्ता जाने की इजाज़त दे। एक बार इस नर्क में पहुँचने के बाद बाहर निकलने के सभी रास्ते नर्क के द्वार पर खड़े राक्षस बन्द कर देते हैं।

कतर में भी अन्य खाड़ी देशों की तरह काम करने की स्थितियाँ अमानवीय हैं। लेकिन 2010 के बाद अचानक प्रवासी मज़दूरों की मौत की संख्या बढ़ने से यह कहा जा सकता है कि यहाँ स्थितियाँ बद से बदतर हो रही हैं। मज़दूर बीमार होने पर अस्पताल में पड़े रहते हैं। ऐसी हालत में इनकी जिन्दगी अधर में लटक जाती है। नियोक्ता उनके इलाज़ पर एक पैसा नहीं खर्च करता और स्वयं इनके पास इलाज के लिए पैसे नहीं होते। वे अस्पताल में पड़े-पड़े अपनेआप ठीक होने का या फिर अपनी मौत का इन्तज़ार करते रहते हैं।

अन्तरराष्ट्रीय क़ानून कम्पनी डीएलए पाइपर ने मज़दूरों के काम और जीने की अमानवीय परिस्थिति पर एक रिपोर्ट तैयार की है। इसमें प्रवासी मज़दूरों की मौत पर कतर का आधिकारिक रिकार्ड भी शामिल किया गया है जिसके अनुसार वर्ष 2012-2013 में 964 मज़दूरों की मौत हुई है। इनमें से 246 की मौत दिल के दौरे से, 35 गिरकर मरे और 28 ने आत्महत्या की है। मरने वालों में 380 नेपाली और 500 भारतीय हैं। डीएलए पाइपर की रिपोर्ट में कफाला व्यवस्था में परिवर्तन की माँग की गयी है। कई मानवाधिकार संगठन और सिविल सोसाइटी फुटबाल महासंघ फीफ़ा पर स्थिति को सुधारने या मेज़बानी वापस लेने के लिए दबाव बना रहे हैं। लेकिन फिलहाल स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। मज़दूरों का मरना जारी है।

अमेरिकी-मेक्सिको सीमा के रास्ते ग़ैर-क़ानूनी प्रवास

अमेरिका में एक करोड़ 10 लाख ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी मज़दूर हैं। पिछले दस सालों में अमेरिका-मेक्सिको सीमा पार करने की कोशिश में 6000 लोगों की जाने जा चुकि हैं जिसमें मरने वालों में सबसे ज़्यादा मेक्सिको के निवासी हैं। निश्चित ही मरने वालों की वास्तविक संख्या इससे कहीं ज़्यादा होगी। अमेरिकी सरकार के लातिन अमेरिकी मामलों के कार्यालय के अनुसार प्रति चार दिन में इस सीमा को पार करते हुए पाँच लोगों की जानें जाती हैं जिसमें अक्सर बच्चों सहित औरतें भी होती हैं। इसके बावजूद लोगों का सीमा पार जाना रुका नहीं है। अमेरिकी सरकार सीमा पार करना ज़्यादा से ज़्यादा कठिन बनाती जा रही है। सीमा सुरक्षा सख़्त बनाने की शुरुआत बिल क्लिंटन के ज़माने से हुई और स्थानीय सरकारों ने प्रवासन नीतियों को सख़्त से सख़्त बनाना आरम्भ कर दिया। इन सबके बावजूद लोगों का सीमा पार करना जारी है तो समझा जा सकता है कि उनकी आर्थिक हालत कितनी कठिन होगी। नितान्त तनावपूर्ण आर्थिक परिस्थितियाँ ग़रीब मेहनतकश आबादी को ऐसे जोखिम भरे क़दम उठाने के लिए मजबूर करती हैं।

अगर किसी तरह ये ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी मज़दूर सीमा पार करने में सफल भी हो गये तो भी उनकी तकलीफ़ों का अन्त नहीं हो जाता। सीमा पार भी उनके जीवन के दुखों का विस्तार जारी रहता है। अमेरिका में ये ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी मज़दूर जिनमें सबसे ज़्यादा आबादी मेक्सिको के मज़दूरों की है, सबसे ज़्यादा शोषित और उत्पीड़ित आबादी है। ये सबसे निकृष्ट कोटि का काम करते हैं। ऐसे काम जिन्हें अमेरिकी मज़दूर नहीं करना चाहते जैसे – कृषि, कृषि आधारित व्यवसाय, सफाई-धुलाई, गराजों में काम, घरेलू नौकर आदि। इसके अलावा निर्माण कार्य में भी यह आबादी काम करती है। इनके काम के घण्टे असामान्य रूप से अधिक होते हैं और कई बार तो एक पाली में काम करते हुए दूसरी पाली का समय शुरू हो जाता है। पूरे महीने हाड़ गलाकर काम करने के बाद भी बेहद कम मज़दूरी मिलती है और कई बार तो मिलती ही नहीं। आवाज़ उठाने पर पुलिस बुलाकर जेल भिजवा दिया जाता है। इस आबादी से मालिक आसानी से बेगारी करवा लेते हैं क्योंकि उन्हें पता है कि ये मज़दूर क़ानूनी तौर पर बेहद असुरक्षित हैं। इसके अलावा इस क्षेत्र में मानव तस्करी बेहद अधिक होती है। लड़कियों, औरतों, पुरुषों, लड़कों आदि को फुसलाकर, झूठे सपने दिखा कर मेक्सिको या अमेरिका के अन्य देशों से लाया जाता है और फिर उनका ज़बरन शारीरिक और यौन शोषण किया जाता है।

इन देशों के अलावा भी कई देश हैं जहाँ से भारी मात्रा में मज़दूरों का प्रवास होता है जैसे – इण्डोनेशिया से मज़दूरों की भारी आबादी मलेशिया जाती है। यहाँ पहले तो चीन और भारत से आने वाले मज़दूरों को रोकने के लिए इण्डोनेशियाई मज़दूरों का स्वागत किया गया। लेकिन पिछले कुछ वर्षों से मलेशिया ने भी आप्रवासन नीतियों को सख़्त बनाया है। आज इण्डोनेशिया के मज़दूर भी कठिन परिस्थितियों का समाना कर रहे हैं क्योंकि अब क़ानूनी प्रवास सरल नहीं रहा। ग़ैर-क़ानूनी प्रवास बढ़ रहा है साथ ही उनका शोषण और उत्पीड़न भी।

ईरान में अफ़गानी ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी मज़दूरों की स्थिति भी बेहद बुरी है। 800,000 अफ़गान शरणार्थी की तरह ईरान में दर्ज हैं और 20 लाख ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी। अफ़गानी प्रवासी मज़दूरों की बड़ी आबादी निर्माण कार्य में लगी है – निश्चित ही ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी मज़दूरों का शोषण और उत्पीड़न ज़्यादा होता है।

यदि विश्व स्तर पर देखा जाये तो निश्चित ही स्त्री मज़दूरों के प्रवास की संख्या पुरुष मज़दूरों से कम है। लेकिन औरतें जहाँ कहीं भी होती है दोहरे शोषण और उत्पीड़न का शिकार होती हैं। लातिन अमेरिका के देशों के बारे में ऊपर लिखा ही है, खाड़ी देशों में भी दक्षिण एशिया विशेषकर दक्षिण भारत की औरतों को घरों में नौकरानी या नर्स का काम दिलाने के नाम पर ले जाया जाता है और फिर उनकी बड़ी आबादी का यौन शोषण किया जाता है।

इस पूँजीवादी, साम्राज्यवादी व्यवस्था में पूँजी के प्रवाह को राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर ज़्यादा सुगम बनाने का प्रयास किया जा रहा है। निजीकरण और उदारवादी नीतियों को ज़्यादा से ज़्यादा मज़बूती से अमल में लाया जा रहा है ताकि पूँजी निर्बन्ध हो सके। लेकिन श्रम के प्रवाह को सुगम नहीं बनाया जा रहा। यदि पूँजी निर्बन्ध हो रही हो तो श्रम पर से भी बन्धन हटाये जाने चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं हो रहा। पश्चिमी देश न केवल अपने यहाँ के आप्रवासन क़ानून सख़्त बना रहे हैं बल्कि घोर दक्षिणपंथी पार्टियाँ लोगों में नस्ली भेदभाव के आधार पर अपने चुनावी खेल खेल रही हैं। जून 2014 में इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री ने बयान दिया कि जितने भी ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी हैं उन्हें ढूँढ़ लिया जायेगा और उन्हें उनके देश भेज दिया जायेगा। इंग्लैंड, जर्मनी, यूनान

(पेज 10 पर जारी)

मज़दूरी की व्यवस्था में मज़दूर के शोषण का रहस्य

कार्ल मार्क्स की पुस्तिका 'उजरती श्रम और पूँजी' में फ्रेडरिक एंगेल्स की भूमिका का एक अंश

आज हम पूँजीवादी उत्पादन के आधिपत्य में रहते हैं, जिसमें आबादी का एक बड़ा और संख्या में दिनोंदिन बढ़नेवाला वर्ग ऐसा है, जो केवल उसी हालत में ज़िन्दा रह सकता है, जबकि वह उत्पादन के साधनों–यानी औज़ारों, मशीनों, कच्चे माल और जीवन-निर्वाह के साधनों–के मालिकों के लिए मज़दूरी के बदले काम करे। उत्पादन की इस प्रणाली के आधार पर मज़दूर के उत्पादन का ख़र्च जीवन-निर्वाह के साधनों की उस मात्रा के बराबर–या रुपये-पैसे की शक्ल में इन साधनों के दाम के बराबर–होता है, जो मज़दूर को काम करने योग्य बनाने, उसे काम के योग्य बनाये रखने और जब वह बुढ़ापे, बीमारी या मौत के कारण कार्यक्षेत्र से हट जाये, तो उसकी ख़ाली जगह को एक नये मज़दूर से भरने के लिए, अर्थात मज़दूर वर्ग की आवश्यक रूप में वंश-वृद्धि करने के लिए ज़रूरी है। मान लीजिये कि जीवन-निर्वाह के इन साधनों का नक़द दाम औसतन तीन मार्क प्रतिदिन है।

इस प्रकार, हमारे मज़दूर को उस पूँजीपति से, जो उसे काम पर लगाता है, तीन मार्क रोज़ाना की मज़दूरी मिलती है। उसके बदले में पूँजीपति मज़दूर से, मान लीजिये, बारह घण्टे रोज़ काम लेता है और मोटे तौर पर इस तरह हिसाब लगाता है :

मान लीजिये कि हमारा मज़दूर एक मिस्त्री है। उसका काम मशीन का एक पुर्ज़ा तैयार करना है, जिसे वह एक दिन में पूरा कर सकता है। इसके लिए कच्चे माल पर–लोहे और पीतल पर, जो पहले से ज़रूरी शक्ल में तैयार कर लिये गये हैं–बीस मार्क की लागत आती है। भाप से चलनेवाले इंजन में जितना कोयला ख़र्च होता है, उसका और इस इंजन में, लेथ में और उन औज़ारों में, जिनको हमारा मज़दूर इस्तेमाल करता है, जितनी घिसाई होती है उसका एक दिन में एक मज़दूर के हिसाब में जो हिस्सा आता है, सब की लागत, मान लीजिये, एक मार्क है। उधर हमने मज़दूर की एक दिन की मज़दूरी तीन मार्क मानी है। इस तरह कुल जोड़ कर हमारे उस मशीन के पुर्ज़े को तैयार करने में चौबीस मार्क लगते हैं। परन्तु पूँजीपति हिसाब लगाता है कि उसे इस पुर्ज़े के बदले में ख़रीदार से औसतन सत्ताईस मार्क, यानी उसकी लागत से तीन मार्क ज़्यादा मिलेंगे।

ये तीन मार्क, जो पूँजीपति की जेब में चले जाते हैं, कहाँ से आते हैं? क्लासिकीय अर्थशास्त्र का दावा है कि माल औसतन अपने मूल्य पर, अर्थात उस दाम पर बिकता है, जो उसमें लगे श्रम के आवश्यक परिमाण के अनुरूप है। इस तरह, हमारे मशीन के पुर्ज़े का औसत दाम–जो सत्ताईस मार्क है–उसके मूल्य के, यानी उसमें लगे श्रम के बराबर होना चाहिये। लेकिन सत्ताईस मार्क की इस रक़म में से इक्कीस मार्क के बराबर का मूल्य तो हमारे मिस्त्री के काम शुरू करने के पहले से ही मौजूद था। बीस मार्क कच्चे माल के रूप में था और एक मार्क उस कोयले के रूप में था, जो काम के दौरान ख़र्च हुआ तथा उन मशीनों और औज़ारों के रूप में था, जो पुर्ज़ा तैयार करने में इस्तेमाल किये गये और इस प्रक्रिया में जिनकी काम करने की शक्ति में इस रक़म के बराबर मूल्य की कमी आ गयी। बचते हैं छह मार्क, जो कच्चे माल के मूल्य में नये जुड़ गये हैं। परन्तु खुद हमारे अर्थशास्त्री यह मानकर चल रहे हैं कि ये छह मार्क केवल उस श्रम से ही पैदा हो सकते हैं, जो मज़दूर ने कच्चे माल में जोड़ दिया है। मतलब यह हुआ कि मज़दूर के बारह घण्टे के श्रम से छह मार्क का नया मूल्य पैदा हो गया। लिहाज़ा उसके बारह घण्टे के श्रम का मूल्य छह मार्क के बराबर बैठता है। और इस प्रकार अन्ततोगत्वा हमने यह पता लगा लिया कि "श्रम का मूल्य" क्या है।

"ज़रा ठहरो!" इतने में हमारा मिस्त्री चिल्लाता है, "छह मार्क? लेकिन मुझे तो सिर्फ़ तीन मार्क मिले हैं! मेरा मालिक तो हलफ़ उठाकर कहता है कि बारह घण्टे की मेरी मेहनत का मूल्य केवल तीन मार्क है और यदि मैं छह मार्क माँगता हूँ, तो वह मुझ पर हँसता है। यह क्या माजरा है?"

यदि हम पहले श्रम के मूल्य को लेकर कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काट रहे थे, तो अब हम एक ऐसे अन्तरविरोध में फँसकर रह गये हैं, जिसका कोई समाधान नहीं है। हम श्रम के मूल्य की खोज करने निकले थे और हमें इतना मूल्य मिल गया कि हम उसका उपयोग नहीं कर सकते। मज़दूर के लिए बारह घण्टे के श्रम का मूल्य तीन मार्क है, पूँजीपति के लिए उसका मूल्य छह मार्क है, जिसमें से तीन मार्क वह मज़दूर को बतौर मज़दूरी के देता है और तीन अपनी जेब में रख लेता है। इस प्रकार, श्रम का एक मूल्य नहीं हुआ, दो मूल्य हुए हैं और तुर्रा यह कि दोनों मूल्य बिल्कुल ही अलग!

यदि मुद्रा में व्यक्त मूल्य को श्रम-काल में रूप में व्यक्त किया जाये, तो यह अन्तरविरोध और भी बेसिर-पैर का मालूम होता है। बारह घण्टे के श्रम से छह मार्क का नया मूल्य पैदा होता है। अत: तीन मार्क, यानी उस रक़म के बराबर मूल्य, जो मज़दूर को बारह घण्टे के श्रम के एवज में मिलता है, छह घण्टे में पैदा होता है। मतलब यह कि मज़दूर को बारह घण्टे के श्रम के लिए छह घण्टे के श्रम की उपज के बराबर मूल्य मिलता है। इसलिए, या तो श्रम के दो मूल्य हैं, एक दूसरे का दुगुना, या बारह बराबर है छह के! दोनों सूरतों में हम बिलकुल औंधी खोपड़ी वाली बात पाते हैं।

आप लाख हाथ-पैर मारिये, पर जब तक आप श्रम के क्रय-विक्रय और श्रम के मूल्य की बातें करते रहेंगे, तब तक आप इस गोरखधन्धे से नहीं निकल पायेंगे। अर्थशास्त्रियों के साथ यही बात हुई है। क्लासिकीय अर्थशास्त्र की अन्तिम शाखा, रिकार्डो की शाखा का प्रधानत: इसी अन्तरविरोध को हल न कर सकने के कारण दिवाला निकल गया। क्लासिकीय अर्थशास्त्र एक अन्धी गली में फँस गया था। इस अन्धी गली से निकलने का रास्ता कार्ल मार्क्स ने खोज निकाला।

जिसे अर्थशास्त्री "श्रम" के उत्पादन का ख़र्च समझते थे, वह श्रम का नहीं, बल्कि खुद जीते-जागते मज़दूर के उत्पादन का ख़र्च है। और यह मज़दूर पूँजीपति के हाथों जो चीज़ बेचता है, वह उसका श्रम नहीं है। मार्क्स ने कहा था : "जैसे ही उसका (मज़दूर का–सं.) श्रम सचमुच आरम्भ होता है, वैसे ही वह मज़दूर की सम्पत्ति नहीं रह जाता और इसलिए तब मज़दूर उसे नहीं बेच सकता। ज़्यादा से ज़्यादा, वह केवल भविष्य का अपना श्रम बेच सकता है, यानी वह एक निश्चित समय में काम की एक विशेष मात्रा पूरा करने का बीड़ा उठा सकता है। परन्तु ऐसा करने में वह अपना श्रम नहीं बेचता (बेचने से पहले श्रम करना ज़रूरी है), बल्कि एक निश्चित समय के लिए (जहाँ समयानुसार मज़दूरी मिलती है) या एक निश्चित मात्रा में माल तैयार करने के लिए (जहाँ कार्यानुसार मज़दूरी मिलती है) वह श्रम-शक्ति को एक निश्चित रक़म के बदले में पूँजीपति के हाथों में सौंप देता है : वह अपनी श्रम-शक्ति को बेचता है, या किराये पर उठाता है। परन्तु यह श्रम-शक्ति उसके शरीर में बसी हुई है और उससे अलग नहीं की जा सकती। इसलिए श्रम-शक्ति के उत्पादन का ख़र्च वही है, जो खुद मज़दूर के उत्पादन का ख़र्च है। अर्थशास्त्री जिसे श्रम के उत्पादन का ख़र्च कहते थे, वह वास्तव में मज़दूर के और उसके साथ-साथ उसकी श्रम-शक्ति का उत्पादन का ख़र्च है। और इसलिए श्रम-शक्ति के उत्पादन के ख़र्च से हम श्रम-शक्ति के मूल्य की ओर लौट सकते हैं और यह निर्धारित कर सकते हैं कि विशेष गुणसम्पन्न श्रम-शक्ति के उत्पादन में सामाजिक दृष्टि से कितना श्रम आवश्यक होगा, जैसा कि श्रम-शक्ति के क्रय-विक्रय वाले अध्याय में मार्क्स ने किया है ('पूँजी', खण्ड 1, भाग 2, छठा अध्याय)।

अच्छा, जब मज़दूर अपनी श्रम-शक्ति पूँजीपति के हाथों में बेच देता है, यानी जब वह उसे पहले से तय की हुई मज़दूरी–समयानुसार अथवा कार्यानुसार–के एवज़ में पूँजीपति के हवाले करता है, तब क्या होता है? पूँजीपति मज़दूर को अपने वर्कशॉप या कारख़ाने के अन्दर ले जाता है, जहाँ काम के लिए ज़रूरी सभी चीज़ें–कच्चा माल, सहायक सामान (कोयला, रंग, आदि), औज़ार, मशीनें–पहले से मौजूद हैं। यहाँ मज़दूर खटना शुरू करता है। उसकी दिनभर की मज़दूरी तीन मार्क हो सकती है, जैसा कि हमने ऊपर माना था–और इस सम्बन्ध में इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वह तीन मार्क समयानुसार मज़दूरी के रूप में कमाता है या कार्यानुसार मज़दूरी के रूप में। यहाँ हम फिर यह मान कर चलते हैं कि बारह घण्टे में मज़दूर अपने श्रम से प्रयुक्त कच्चे माल में छह मार्क का नया मूल्य जोड़ देता है, जिस नये मूल्य को पूँजीपति तैयार माल को बेच कर वसूल करता है। उसमें से वह मज़दूर को उसके तीन मार्क दे देता है और बचे हुए तीन मार्क अपने पास रख लेता है। अब मज़दूर यदि बारह घण्टे में छह मार्क का मूल्य पैदा करता है, तो वह छह घण्टे में तीन मार्क का मूल्य पैदा करता है। इसलिए अपनी मज़दूरी के तीन मार्क का तुल्य मूल्य तो उसने पूँजीपति को तभी चुका दिया, जब वह उसके लिए छह घण्टे काम कर चुका। छह घण्टे के काम के बाद दोनों का हिसाब चुकता हो गया; अब उनका एक दूसरे पर एक पैसा भी बाक़ी नहीं रहा।

"ज़रा ठहरो!" अब पूँजीपति चिल्ला उठता है, "मैंने मज़दूर को पूरे दिन, यानी बारह घण्टे के लिए काम पर रखा है और छह घण्टे के माने होते हैं सिर्फ़ आधा दिन। इसलिए, जब तक बाक़ी छह घण्टे भी पूरे न हो जायें, तब तक काम करते जाओ! उसके बाद ही हमारा-तुम्हारा हिसाब चुकता होगा!" और सचमुच मज़दूर को उस क़रार को निभाना पड़ता है, जो उसने "स्वेच्छापूर्वक" किया है और जिसके अनुसार वह वादा कर चुका है कि वह छह घण्टे के श्रम की लागत की चीज़ पाने के एवज़ मे पूरे बारह घण्टे तक काम करेगा।

कार्यानुसार मज़दूरी के साथ यही बात है। मान लीजिये कि हमारा यह मज़दूर बारह घण्टे में किसी माल के बारह अदद तैयार करता है। उनमें से हर अदद में लगे हुए कच्चे माल में और मशीनों, आदि की घिसाई में दो मार्क ख़र्च होते हैं और हरेक अदद ढाई मार्क में बिकता है। तब, पहले की शर्तों के आधार पर, पूँजीपति मज़दूर को हर अदद के लिए पचीस फ़ेनिग* देगा। इस दर पर बारह अदद के लिए मज़दूर को तीन मार्क मिलेंगे, जिनको कमाने के लिए मज़दूर को बारह घण्टे काम करना पड़ता है। पूँजीपति को बारह अदद के लिए तीस मार्क मिलेंगे। उनमें से चौबीस मार्क कच्चे माल और मशीनों, आदि की घिसाई की मद के लिए निकाल दीजिये। तब बचते हैं छह मार्क, जिनमें से वह तीन मार्क मज़दूर को बतौर मज़दूरी के दे देता है और तीन मार्क अपनी जेब में डाल लेता है। बात बिल्कुल वही है, जो ऊपर कही गयी थी। यहाँ भी मज़दूर अपने लिए, यानी अपनी मज़दूरी के बराबर मूल्य उत्पन्न करने के लिए, छह घण्टे (बारह घण्टों में प्रत्येक में से आधा घण्टा) काम करता है और छह घण्टे पूँजीपति के लिए काम करता है।

अच्छे से अच्छे अर्थशास्त्री "श्रम" के मूल्य से आरम्भ करने पर जिस कठिनाई में फँसकर रह जाते थे, वह "श्रम" के बजाय "श्रम-शक्ति" से आरम्भ करते ही तुरन्त ग़ायब हो जाती है। आजकल के हमारे पूँजीवादी समाज में अन्य किसी भी माल की तरह श्रम-शक्ति भी एक माल है, और फिर भी वह एक अत्यन्त विशिष्ट प्रकार का माल है। उसमें यह विशिष्ट गुण है कि वह मूल्योत्पादक शक्ति है; वह मूल्य का स्रोत है, सचमुच एक ऐसा स्रोत है कि अगर उसका उचित इस्तेमाल किया जाये, तो जितना मूल्य वह स्वयं रखता है उससे भी अधिक मूल्य उत्पन्न कर सकता है। उत्पादन की वर्तमान अवस्था में मानव श्रम-शक्ति दिन भर में न केवल स्वयं अपने मूल्य तथा अपनी लागत से अधिक मूल्य पैदा कर देती है, बल्कि हर नयी वैज्ञानिक खोज और हर नये प्राविधिक आविष्कार के साथ उसकी रोज़मर्रा की लागत के मुक़ाबले उसकी रोज़मर्रा की पैदावार की यह बेशी बढ़ती जाती है, अत: श्रम के दिन का वह भाग, जिसमें मज़दूर अपनी दिन भर की मज़दूरी का प्रतिमूल्य उत्पन्न करने के लिए काम करता है, घटता जाता है और, दूसरी ओर, श्रम के दिन का वह भाग, जिसमें मज़दूर को अपना श्रम बिना उजरत लिये पूँजीपति को नज़र कर देना पड़ता है, बढ़ता जाता है।

आजकल के हमारे पूरे समाज का यही आर्थिक ढाँचा है : सभी प्रकार का मूल्य केवल मज़दूर वर्ग ही उत्पन्न करता है। कारण, मूल्य श्रम का ही दूसरा नाम है, वह नाम, जो आजकल के हमारे पूँजीवादी समाज में किसी ख़ास माल के उत्पादन में लगे सामाजिक दृष्टि से आवश्यक श्रम की मात्रा को दिया जाता है। लेकिन मज़दूरों द्वारा उत्पन्न इन मूल्यों पर मज़दूरों का अधिकार नहीं होता। उन पर अधिकार होता है कच्चे माल, मशीनों, औज़ारों तथा आरक्षित निधियों के मालिकों का, जो मालिकों को मज़दूर वर्ग की श्रम-शक्ति को ख़रीदने का सुयोग प्रदान करते हैं। इसलिए मज़दूर वर्ग जो राशि उपज पैदा करता है, उसमें से उसे केवल एक हिस्सा ही वापस मिलता है। और, जैसा कि हमने अभी देखा, उसका दूसरा हिस्सा, जो पूँजीपति अपने पास रख लेता है, जिसमें से उसे ज़्यादा से ज़्यादा ज़मींदार के साथ हिस्सा बँटाना पड़ता है, हर नये आविष्कार तथा खोज के साथ बढ़ता जाता है, जबकि मज़दूर वर्ग के हिस्से में आनेवाला भाग (प्रति आदमी के हिसाब से) या तो बहुत ही धीरे-धीरे और बहुत ही कम बढ़ता है, या बिल्कुल ही नहीं बढ़ता और बाज़ सूरतों में तो वह घट भी सकता है।

लेकिन ये आविष्कार और खोजें, जो नित्य बढ़ती हुई गति से एक

(पेज 10 पर जारी)

मक्सिम गोर्की की कहानी

करोड़पति कैसे होते हैं

संयुक्त राज्य अमेरिका के इस्पात और तेल के सम्राटों और बाकी सम्राटों ने मेरी कल्पना को हमेशा तंग किया है। मैं कल्पना ही नहीं कर सकता कि इतने सारे पैसेवाले लोग सामान्य नश्वर मनुष्य हो सकते हैं।

मुझे हमेशा लगता रहा है कि उनमें से हर किसी के पास कम से कम तीन पेट और डेढ़ सौ दाँत होते होंगे। मुझे यकीन था कि हर करोड़पति सुबह छः बजे से आधी रात तक खाना खाता रहता होगा। यह भी कि वह सबसे महँगे भोजन भकोसता होगा : बत्तखें, टर्की, नन्हे सूअर, मक्खन के साथ गाजर, मिठाइयाँ, केक और तमाम तरह के लज़ीज़ व्यंजन। शाम तक उसके जबड़े इतना थक जाते होंगे कि वह अपने नीग्रो नौकरों को आदेश देता होगा कि वे उसके लिए खाना चबाएँ ताकि वह आसानी से उसे निगल सके। आखिरकार जब वह बुरी तरह थक चुकता होगा, पसीने से नहाया हुआ, उसके नौकर उसे बिस्तर तक लाद कर ले जाते होंगे। और अगली सुबह वह छः बजे जागता होगा अपनी श्रमसाध्य दिनचर्या को दुबारा शुरू करने को।

लेकिन इतनी ज़बरदस्त मेहनत के बावजूद वह अपनी दौलत पर मिलने वाले ब्याज का आधा भी खर्च नहीं कर पाता होगा।

निश्चित ही यह एक मुश्किल जीवन होता होगा। लेकिन किया भी क्या जा सकता होगा? करोड़पति होने का फ़ायदा ही क्या अगर आप और लोगों से ज़्यादा खाना न खा सकें?

मुझे लगता था कि उसके अन्तर्वस्त्र बेहतरीन कशीदाकारी से बने होते होंगे। उसके जूतों के तलुवों पर सोने की कीलें ठुकी होती होंगी और हैट की जगह वह हीरों से बनी कोई टोपी पहनता होगा। उसकी जैकेट सबसे महँगी मखमल की बनी होती होगी। वह कम से कम पचास मीटर लम्बी होती होगी और उस पर सोने के कम से कम तीन सौ बटन लगे होते होंगे। छुट्टियों में वह एक के ऊपर एक आठ जैकेटें और छः पतलूनें पहनता होगा। यह सच है कि ऐसा करना अटपटा होने के साथ साथ असुविधापूर्ण भी होता होगा... लेकिन एक करोड़पति जो इतना रईस हो बाकी लोगों जैसे कपड़े कैसे पहन सकता है...

करोड़पति की जेबें एक विशाल गड्ढे जैसी होती होंगी जिनमें वह समूचा चर्च, संसद की इमारत और अन्य छोटी-मोटी ज़रूरतों को रख सकता होगा। लेकिन जहाँ एक तरफ मैं सोचता था कि इन महाशय के पेट की क्षमता किसी बड़े समुद्री जहाज़ के गोदाम जितनी होती होगी मुझे इन साहब की टाँगों पर फिट आने वाली पतलून के आकार की कल्पना करने में थोड़ी हैरानी हुई। अलबत्ता मुझे यकीन था कि वह एक वर्ग मील से कम आकार की रज़ाई के नीचे नहीं सोता होगा। और अगर वह तम्बाकू चबाता होगा तो सबसे नफीस किस्म का और एक बार में एक या दो पाउण्ड से कम नहीं। अगर वह नसवार सूँघता होगा तो एक बार में एक पाउण्ड से कम नहीं। पैसा अपनेआप को खर्च करना चाहता है...

उसकी उँगलियाँ अद्भुत तरीके से संवेदनशील होती होंगी और उनमें अपनी इच्छानुसार लम्बा हो जाने की जादुई ताकत होती होगी : मिसाल के तौर पर वह साइबेरिया में अंकुरित हो रहे एक डॉलर पर न्यूयार्क से निगाह रख सकता था और अपनी सीट से हिले बिना वह बेरिंग स्टेट तक अपना हाथ बढ़ाकर अपना पसन्दीदा फूल तोड़ सकता था।

अटपटी बात यह है कि इस सब के बावजूद मैं इस बात की कल्पना नहीं कर पाया कि इस दैत्य का सिर कैसा होता होगा। मुझे लगा कि वह सिर मांसपेशियों और हड्डियों का ऐसा पिण्ड होता होगा जिसे फ़कत हर एक चीज़ से सोना चूस लेने की इच्छा से प्रेरणा मिलती होगी। लब्बोलुआब यह कि करोड़पति की मेरी छवि एक हद तक अस्पष्ट थी। संक्षेप में कहूँ तो सबसे पहले मुझे दो लम्बी लचीली बाँहें नजर आती थीं। उन्होंने ग्लोब को अपनी लपेट में ले रखा था और उसे अपने मुँह की भूखी गुफा के पास खींच रखा था जो हमारी धरती को चूसता-चबाता जा रहा था : उसकी लालचभरी लार उसके ऊपर टपक रही थी जैसे वह तन्दूर में सिंका कोई स्वादिष्ट आलू हो।

आप मेरे आश्चर्य की कल्पना कर सकते हैं जब एक करोड़पति से मिलने पर मैंने उसे एक निहायत साधारण आदमी पाया।

एक गहरी आरामकुर्सी पर मेरे सामने एक बूढ़ा सिकुड़ा-सा शख़्स बैठा हुआ था जिसके झुरीदार भूरे हाथ शान्तिपूर्वक उसकी तोंद पर धरे हुए थे। उसके थुलथुल गालों पर करीने से हज़ामत बनायी गयी थी और उसका ढुलका हुआ निचला होंठ बढ़िया बनी हुई उसकी बत्तीसी दिखला रहा था जिसमें कुछेक दांत सोने के थे। उसका रक्तहीन और पतला ऊपरी होंठ उसके दाँतों से चिपका हुआ था और जब वह बोलता था उस ऊपरी होंठ में ज़रा भी गति नहीं होती थी। उसकी बेरंग आँखों के ऊपर भौंहें बिल्कुल नहीं थीं और सूरज में तपे हुए उसके सिर पर एक भी बाल नहीं था। उसे देखकर महसूस होता था कि उसके चेहरे पर थोड़ी और त्वचा होती तो शायद बेहतर होता या लाली लिए हुए वह गतिहीन और मुलायम चेहरा किसी नवजात शिशु के जैसा लगता था। यह तय कर पाना मुश्किल था कि यह प्राणी दुनिया में अभी अभी आया है या यहाँ से जाने की तैयारी में है...

उसकी पोशाक भी किसी साधारण आदमी की ही जैसी थी। उसके बदन पर सोना घड़ी, अँगूठी और दाँतों तक सीमित था। कुल मिलाकर शायद वह आधे पाउण्ड से कम था। आम तौर पर वह यूरोप के किसी कुलीन घर के पुराने नौकर जैसा नज़र आ रहा था...

जिस कमरे में वह मुझसे मिला उसमें सुविधा या सुन्दरता के लिहाज़ से कुछ भी उल्लेखनीय नहीं था। फर्नीचर विशालकाय था पर बस इतना ही था।

उसके फर्नीचर को देखकर लगता था कि कभी-कभी हाथी उसके घर तशरीफ लाया करते थे।

"क्या आप... आप... ही करोड़पति हैं?" अपनी आँखों पर अविश्वास करते हुए मैंने पूछा।

"हाँ, हाँ!" उसने सिर हिलाते हुए जवाब दिया।

मैंने उसकी बात पर विश्वास करने का नाटक किया और फैसला किया कि उसकी गप्प का उसी वक्त इम्तहान ले लूँ।

"आप नाश्ते में कितना गोश्त खा सकते हैं?" मैंने पूछा।

"मैं गोश्त नहीं खाता," उसने घोषणा की, "बस सन्तरे की एक फाँक, एक अण्डा और चाय का छोटा प्याला..."

बच्चों जैसी उसकी आँखों में धुँधलाए पानी की दो बड़ी बूँदों जैसी चमक आयी और मैं उनमें झूठ का नामोनिशान नहीं देख पा रहा था।

"चलिए ठीक है," मैंने संशयपूर्वक बोलना शुरू किया। "मैं आपसे विनती करता हूँ कि मुझे ईमानदारी से बताइए कि आप दिन में कितनी बार खाना खाते हैं?"

"दिन में दो बार," उसने ठण्डे स्वर में कहा। "नाश्ता और रात का खाना। मेरे लिए पर्याप्त होता है। रात को खाने में मैं थोड़ा सूप, थोड़ा चिकन और कुछ मीठा लेता हूँ। कोई फल। एक कप कॉफी। एक सिगार..."

मेरा आश्चर्य कद्दू की तरह बढ़ रहा था। उसने मुझे सन्तों की-सी निगाह से देखा। मैं साँस लेने को ठहरा और फिर पूछना शुरू किया:

"लेकिन अगर यह सच है तो आप अपने पैसे का क्या करते हैं?"

उसने अपने कन्धों को ज़रा उचकाया और उसकी आँखें अपने गड्ढों में कुछ देर लुढ़कीं और उसने जवाब दिया:

"मैं उसका इस्तेमाल और पैसा बनाने में करता हूँ..."

"किस लिए?"

"ताकि मैं और अधिक पैसा बना सकूँ..."

"लेकिन किसलिए?" मैंने हठपूर्वक पूछा।

वह आगे की तरफ झुका और अपनी कोहनियों को कुर्सी के हत्थे पर टिकाते हुए तनिक उत्सुकता से पूछा:

"क्या आप पागल हैं?"

"क्या आप पागल हैं?" मैंने पलटकर जवाब दिया।

बूढ़े ने अपना सिर झुकाया और सोने के दाँतों के बीच से धीरे-धीरे बोलना शुरू किया:

"तुम बड़े दिलचस्प आदमी हो... मुझे याद नहीं पड़ता मैं कभी तुम्हारे जैसे आदमी से मिला हूँ..."

उसने अपना सिर उठाया और अपने मुँह को करीब-करीब कानों तक फैलाकर ख़ामोशी के साथ मेरा मुआयना करना शुरू किया। उसके शान्त व्यवहार को देख कर लगता था कि स्पष्टतः वह अपनेआप को सामान्य आदमी समझता था। मैंने उसकी टाई पर लगी एक पिन पर जड़े छोटे-से हीरे को देखा। अगर वह हीरा जूते की एड़ी जितना बड़ा होता तो मैं शायद जान सकता था कि मैं कहाँ बैठा हूँ।

"और अपने खुद के साथ आप क्या करते हैं?"

"मैं पैसा बनाता हूँ।" अपने कन्धों को तनिक फैलाते हुए उसने जवाब दिया।

"यानी आप नकली नोटों का धन्धा करते हैं" मैं ख़ुश होकर बोला मानो मैं रहस्य पर से परदा उठाने ही वाला हूँ। लेकिन इस मौके पर उसे हिचकियाँ आनी शुरू हो गयीं। उसकी सारी देह हिलने लगी जैसे कोई अदृश्य हाथ उसे गुदगुदी कर रहा हो। वह अपनी आँखों को तेज़-तेज़ झपकाने लगा।

"यह तो मसखरापन है," ठण्डा पड़ते हुए उसने कहा और मेरी तरफ एक सन्तुष्ट निगाह डाली। "मेहरबानी कर के मुझसे कोई और बात पूछिए," उसने निमंत्रित करते हुए कहा और किसी वजह से अपने गालों को जरा सा फुलाया।

मैंने एक पल को सोचा और निश्चित आवाज़ में पूछा:

"और आप पैसा कैसे बनाते हैं?"

"अरे हाँ! ये ठीकठाक बात हुई!" उसने सहमति में सिर हिलाया। "बड़ी साधारण-सी बात है। मैं रेलवे का मालिक हूँ। किसान माल पैदा करते हैं। मैं उनका माल बाजार में पहुँचाता हूँ। आपको बस इस बात का हिसाब लगाना होता है कि आप किसान के वास्ते बस इतना पैसा छोड़ें कि वह भूख से न मर जाये और आपके लिए काम करता रहे। बाकी का पैसा मैं किराये के तौर पर अपनी जेब में डाल लेता हूँ। बस इतनी-सी बात है।"

"और क्या किसान इससे सन्तुष्ट रहते हैं?"

"मेरे ख्याल से सारे नहीं रहते!" बालसुलभ साधारणता के साथ वह बोला "लेकिन वो कहते हैं ना, लोग कभी सन्तुष्ट नहीं होते। ऐसे पागल लोग आपको हर जगह मिल जायेंगे जो बस शिकायत करते रहते हैं..."

"तो क्या सरकार आपसे कुछ नहीं कहती?" आत्मविश्वास की कमी के बावजूद मैंने पूछा।

"सरकार?" उसकी आवाज़ थोड़ा गूँजी फिर उसने कुछ सोचते हुए अपने माथे पर उँगलियाँ फिरायीं। फिर उसने अपना सिर हिलाया जैसे उसे कुछ याद आया हो: "अच्छा... तुम्हारा मतलब है वो लोग... जो वाशिंगटन में बैठते हैं? ना वो मुझे तंग नहीं करते। वो अच्छे बन्दे हैं... उनमें से कुछ मेरे क्लब के सदस्य भी हैं। लेकिन उनसे बहुत ज़्यादा मुलाकात नहीं होती... इसी वजह से कभी-कभी मैं उनके बारे में भूल जाता हूँ। ना वो मुझे तंग नहीं करते।" उसने अपनी बात दोहरायी और मेरी तरफ उत्सुकता से देखते हुए पूछा:

"क्या आप कहना चाह रहे हैं कि ऐसी सरकारें भी होती हैं जो लोगों को पैसा बनाने से रोकती हैं?"

मुझे अपनी मासूमियत और उसकी बुद्धिमत्ता पर कोफ़्त हुई।

"नहीं," मैंने धीमे से कहा "मेरा ये मतलब नहीं था... देखिए सरकार को कभी-कभी तो सीधी-सीधी डकैती पर लगाम लगानी चाहिए ना..."

"अब देखिए!" उसने आपत्ति की। "ये तो आदर्शवाद हो गया। यहाँ यह सब नहीं चलता। व्यक्तिगत कार्यों में दखल देने का सरकार को कोई हक नहीं..."

उसकी बच्चों जैसी बुद्धिमत्ता के सामने मैं खुद को बहुत छोटा पा रहा था।

"लेकिन अगर एक आदमी कई लोगों को बर्बाद कर रहा हो तो क्या वह व्यक्तिगत काम माना जायेगा?" मैंने विनम्रता के साथ पूछा।

"बर्बादी?" आँखें फैलाते हुए उसने जवाब देना शुरू किया।

(पेज 15 पर जारी)

(पेज 14 से आगे)

"बर्बादी का मतलब होता है जब मज़दूरी की दरें ऊँची होने लगें। या जब हड़ताल हो जाये। लेकिन हमारे पास आप्रवासी लोग हैं। वो खुशी-खुशी कम मज़दूरी पर हड़तालियों की जगह काम करना शुरू कर देते हैं। जब हमारे मुल्क में बहुत सारे ऐसे आप्रवासी हो जायेंगे जो कम पैसे पर काम करें और ख़ूब सारी चीज़ें ख़रीदें तब सब कुछ ठीक हो जायेगा।"

वह थोड़ा-सा उत्तेजित हो गया था और एक बच्चे और बूढ़े के मिश्रण से कुछ कम नज़र आने लगा था। उसकी पतली भूरी उँगलियाँ हिलीं और उसकी रूखी आवाज़ मेरे कानों पर पड़पड़ाने लगी:

"सरकार? ये वास्तव में दिलचस्प सवाल है। एक अच्छी सरकार का होना महत्वपूर्ण है। उसे इस बात का ख़्याल रहता है कि इस देश में उतने लोग हों जितनों की मुझे ज़रूरत है और जो उतना ख़रीद सकें जितना मैं बेचना चाहता हूँ; और मज़दूर बस उतने हों कि मेरा काम कभी न थमे। लेकिन उससे ज़्यादा नहीं! फिर कोई समाजवादी नहीं बचेंगे। और हड़तालें भी नहीं होंगी। और सरकार को बहुत ज़्यादा टैक्स भी नहीं लगाने चाहिए। लोग जो देना चाहें वह ले ले। इसको मैं कहता हूँ अच्छी सरकार।"

"वह बेवकूफ़ नहीं है। यह एक तयशुदा संकेत है कि उसे अपनी महानता का भान है।" मैं सोच रहा था। "इस आदमी को वाकई राजा ही होना चाहिए..."

"मैं चाहता हूँ," वह स्थिर और विश्वासभरी आवाज़ में बोलता गया "कि इस मुल्क में अमन-चैन हो। सरकार ने तमाम दार्शनिकों को भाड़े पर रखा हुआ है जो हर इतवार को कम से कम आठ घण्टे लोगों को यह सिखाने में ख़र्च करते हैं कि क़ानून की इज़्ज़त की जानी चाहिए। और अगर दार्शनिकों से यह काम नहीं होता तो सरकार फौज बुला लेती है। तरीका नहीं बल्कि नतीजा ज़्यादा महत्वपूर्ण होता है। ग्राहक और मज़दूर को कानून की इज़्ज़त करना सिखाया जाना चाहिए। बस!" अपनी उँगलियों से खेलते हुए उसने अपनी बात पूरी की।

...

"और धर्म के बारे में आप का क्या ख्याल है?" अब मैंने प्रश्न किया जबकि वह अपना राजनीतिक दृष्टिकोण स्पष्ट कर चुका था।

"अच्छा!" उसने उत्तेजना के साथ अपने घुटनों को थपथपाया और बरौनियों को झपकाते हुए कहा : "मैं इस बारे में भली बातें सोचता हूँ। लोगों के लिए धर्म बहुत ज़रूरी है। इस बात पर मेरा पूरा यकीन है। सच बताऊँ तो मैं ख़ुद इतवारों को चर्च में भाषण दिया करता हूँ... बिल्कुल सच कह रहा हूँ आपसे।"

"और आप क्या कहते हैं अपने भाषणों में?" मैंने सवाल किया।

"वही सब जो एक सच्चा ईसाई चर्च में कह सकता है!" उसने बहुत विश्वस्त होकर कहा। "देखिए मैं एक छोटे चर्च में भाषण देता हूँ और ग़रीब लोगों को हमेशा दयापूर्ण शब्दों और पितासदृश सलाह की ज़रूरत होती है... मैं उनसे कहता हूँ..."

"ईसामसीह के बन्दो! ईर्ष्या के दैत्य के लालच से ख़ुद को बचाओ और दुनियादारी से भरी चीज़ों को त्याग दो। इस धरती पर जीवन संक्षिप्त होता है : बस चालीस की आयु तक आदमी अच्छा मज़दूर बना रह सकता है। चालीस के बाद उसे फैक्ट्रियों में रोज़गार नहीं मिल सकता। जीवन कतई सुरक्षित नहीं है। काम के वक्त आपके हाथों की एक गलत हरकत और मशीन आपकी हड्डियों को कुचल सकती है। लू लग गयी और आपकी कहानी खत्म हो सकती है। हर कदम पर बीमारी और दुर्भाग्य कुत्ते की तरह आपका पीछा करते रहते हैं। एक ग़रीब आदमी किसी ऊँची इमारत की छत पर खड़े अन्धे आदमी जैसा होता है। वह जिस दिशा में जायेगा अपने विनाश में जा गिरेगा जैसा जूड के भाई फरिश्ते जेम्स ने हमें बताया है। भाइयो, आप को दुनियावी चीज़ों से बचना चाहिए। वह मनुष्य को तबाह करने वाले शैतान का कारनामा है। ईसामसीह के प्यारे बच्चो, तुम्हारा साम्राज्य तुम्हारे परमपिता के साम्राज्य जैसा है। वह स्वर्ग में है। और अगर तुम में धैर्य होगा और तुम अपने जीवन को बिना शिकायत किये, बिना हल्ला किये बिताओगे तो वह तुम्हें अपने पास बुलायेगा और इस धरती पर तुम्हारी कड़ी मेहनत के परिणाम के बदले तुम्हें ईनाम में स्थाई शान्ति बख़्शेगा। यह जीवन तुम्हारी आत्मा की शुद्धि के लिए दिया गया है और जितना तुम इस जीवन में सहोगे उतना ज़्यादा आनन्द तुम्हें मिलेगा जैसा कि ख़ुद फरिश्ते जूड ने बताया है।"

उसने छत की तरफ इशारा किया और कुछ देर सोचने के बाद ठण्डी और कठोर आवाज़ में कहा:

"हाँ, मेरे प्यारे भाइयो और बहनो, अगर आप अपने पड़ोसी के लिए चाहे वह कोई भी हो, इसे कुर्बान नहीं करते तो यह जीवन खोखला और बिल्कुल साधारण है। ईर्ष्या के राक्षस के सामने अपने दिलों को समर्पित मत करो। किस चीज से ईर्ष्या करोगे? जीवन के आनन्द बस धोखा होते हैं; राक्षस के खिलौने। हम सब मारे जायेंगे। अमीर और ग़रीब, राजा और कोयले की खान में काम करने वाले मज़दूर, बैंकर और सड़क पर झाड़ू लगाने वाले। यह भी हो सकता है कि स्वर्ग के उपवन में आप राजा बन जायें और राजा झाड़ू लेकर रास्ते से पत्तियाँ साफ कर रहा हो और आपकी खायी हुई मिठाइयों के छिलके बुहार रहा हो। भाइयो, यहाँ इस धरती पर इच्छा करने को है ही क्या? पाप से भरे इस घने जंगल में जहाँ आत्मा बच्चों की तरह पाप करती रहती है। प्यार और विनम्रता का रास्ता चुनो और जो तुम्हारे नसीब में आता है उसे सहन करो। अपने साथियों को प्यार दो, उन्हें भी जो तुम्हारा अपमान करते हैं..."

उसने फिर से आँखें बन्द कर लीं और अपनी कुर्सी पर आराम से हिलते हुए बोलना जारी रखा:

"ईर्ष्या की उन पापी भावनाओं और लोगों की बात पर ज़रा भी कान न दो जो तुम्हारे सामने किसी की ग़रीबी और किसी दूसरे की सम्पन्नता का विरोधाभास दिखाती हैं। ऐसे लोग शैतान के कारिन्दे होते हैं। अपने पड़ोसी से ईर्ष्या करने से भगवान ने तुम्हें मना किया हुआ है। अमीर लोग भी निर्धन होते हैं : प्रेम के मामले में। ईसामसीह के भाई जूड ने कहा था अमीरों से प्यार करो क्योंकि वे ईश्वर के चहेते हैं। समानता की कहानियों और शैतान की बाकी बातों पर जरा भी ध्यान मत दो। इस धरती पर क्या होती है समानता? आपको अपने ईश्वर के सम्मुख एक-दूसरे के साथ अपनी आत्मा की शुद्धता की बराबरी करनी चाहिए। धैर्य के साथ अपनी सलीब धारण करो और आज्ञापालन करने से तुम्हारा बोझ हल्का हो जायेगा। ईश्वर तुम्हारे साथ है मेरे बच्चो और तुम्हें उसके अलावा किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है!"

"सरकार? ये वास्तव में दिलचस्प सवाल है। एक अच्छी सरकार का होना महत्वपूर्ण है। उसे इस बात का ख़्याल रहता है कि इस देश में उतने लोग हों जितनों की मुझे ज़रूरत है और जो उतना ख़रीद सकें जितना मैं बेचना चाहता हूँ; और मज़दूर बस उतने हों कि मेरा काम कभी न थमे। लेकिन उससे ज़्यादा नहीं! फिर कोई समाजवादी नहीं बचेंगे। और हड़तालें भी नहीं होंगी।"

बूढ़ा चुप हुआ और उसने अपने होंठों को फैलाया। उसके सोने के दाँत चमके और वह विजयी मुद्रा में मुझे देखने लगा। "आपने धर्म का बढ़िया इस्तेमाल किया," मैंने कहा। "हाँ बिल्कुल ठीक! मुझे उसकी कीमत पता है।" वह बोला, "मैं अपनी बात दोहराता हूँ कि ग़रीबों के लिए धर्म बहुत ज़रूरी है। मुझे अच्छा लगता है यह। यह कहता है कि इस धरती पर सारी चीज़ें शैतान की हैं। और ऐ इन्सान, अगर तू अपनी आत्मा को बचाना चाहता है तो यहाँ धरती पर किसी भी चीज़ को छूने तक की इच्छा मत कर। जीवन के सारे आनन्द तुझे मौत के बाद मिलेंगे। स्वर्ग की हर चीज़ तेरी है। जब लोग इस बात पर विश्वास करते हैं तो उन्हें सम्हालना आसान हो जाता है। हाँ, धर्म एक चिकनाई की तरह होता है। और जीवन की मशीन को हम इससे चिकना बनाते रहें तो सारे पुर्ज़े ठीकठाक काम करते रहते हैं और मशीन चलाने वाले के लिए आसानी होती है..."

"यह आदमी वाकई में राजा है," मैंने फैसला किया।

...

"शायद आप विज्ञान के बारे में कुछ कहना चाहेंगे?" मैंने शान्ति से सवाल किया।

"विज्ञान?" उसने अपनी एक उँगली छत की तरफ उठायी। फिर उसने अपनी घड़ी बाहर निकाली, समय देखा और उसकी चेन को अपनी उँगली पर लपेटते हुए उसे हवा में उछाल दिया। फिर उसने एक आह भरी और कहना शुरू किया :

"विज्ञान... हाँ मुझे मालूम है। किताबें। अगर वे अमेरिका के बारे में अच्छी बातें करती हैं तो वे उपयोगी हैं। मेरा विचार है कि ये कवि लोग जो किताबें-विताबें लिखते हैं बहुत कम पैसा बना पाते हैं। ऐसे देश में जहाँ हर कोई अपने धन्धे में लगा हुआ है किताबें पढ़ने का समय किसी के पास नहीं है...। हाँ और ये कवि लोग गुस्से में आ जाते हैं कि कोई उनकी किताबें नहीं खरीदता। सरकार को लेखकों को ठीकठाक पैसा देना चाहिए। बढ़िया खाया-पिया आदमी हमेशा खुश और दयालु होता है। अगर अमेरिका के बारे में किताबें वाकई ज़रूरी हैं तो अच्छे कवियों को भाड़े पर लगाया जाना चाहिए और अमरीका की ज़रूरत की किताबें बनायी जानी चाहिए... और क्या।"

"विज्ञान की आपकी परिभाषा बहुत संकीर्ण है।" मैंने विचार करते हुए कहा।

उसने आँखें बन्द कीं और विचारों में खो गया। फिर आँखें खोलकर उसने आत्मविश्वास के साथ बोलना शुरू कियारू

"हाँ, हाँ... अध्यापक और दार्शनिक... वह भी विज्ञान होता है। मैं जानता हूँ प्रोफेसर, दाइयाँ, दाँतों के डाक्टर, ये सब। वकील, डाक्टर, इंजीनियर। ठीक है, ठीक है। वो सब ज़रूरी हैं। अच्छे विज्ञान को ख़राब बातें नहीं सिखानी चाहिए। लेकिन मेरी बेटी के अध्यापक ने एक बार मुझे बताया था कि सामाजिक विज्ञान भी कोई चीज़ है...। ये बात मेरी समझ में नहीं आयी...। मेरे ख्याल से ये नुकसानदेह चीज़ें हैं। एक समाजशास्त्री अच्छे विज्ञान की रचना नहीं कर सकता। उनका विज्ञान से कुछ लेना-देना नहीं होता। एडीसन बना रहा है ऐसा विज्ञान जो उपयोगी है। फोनोगाफ और सिनेमा – वह उपयोगी है। लेकिन विज्ञान की इतनी सारी किताबें? ये तो हद है। लोगों को उन किताबों को नहीं पढ़ना चाहिए जिनसे उनके दिमागों में सन्देह पैदा होने लगें। इस धरती पर सब कुछ वैसा ही है जैसा होना चाहिए और उस सबको किताबों के साथ नहीं गड़बड़ाया जाना चाहिए।"

मैं खड़ा हो गया।

"अच्छा तो आप जा रहे हैं?"

"हाँ," मैंने कहा "लेकिन शायद चूँकि अब मैं जा रहा हूँ क्या आप मुझे बता सकते हैं करोड़पति होने का मतलब क्या है?"

उसे हिचकियाँ आने लगीं और वह अपने पैर पटकने लगा। शाायद यह उसके हँसने का तरीका था।

"यह एक आदत होती है," जब उसकी साँस आयी तो वह ज़ोर से बोला।

"आदत क्या होती है?" मैंने सवाल किया।

"करोड़पति होना... एक आदत होती है भाई!"

कुछ देर सोचने के बाद मैंने अपना आखिरी सवाल पूछा:

"तो आप समझते हैं कि सारे आवारा, नशेड़ी और करोड़पति एक ही तरह के लोग होते हैं?"

इस बात से उसे चोट पहुँची होगी। उसकी आँखें बड़ी हुईं और गुस्से ने उन्हें हरा बना दिया।

"मेरे ख़्याल से तुम्हारी परवरिश ठीकठाक नहीं हुई है।" उसने गुस्से में कहा।

"अलविदा," मैंने कहा।

वह विनम्रता के साथ मुझे पोर्च तक छोड़ने आया और सीढ़ियों के ऊपर अपने जूतों को देखता खड़ा रहा। उसके घर के आगे एक लॉन था जिस पर बढ़िया छँटी हुई घनी घास थी। मैं यह विचार करता हुआ लॉन पर चल रहा था कि शुक्र है मुझे इस आदमी से फिर कभी नहीं मिलना पड़ेगा। तभी मुझे पीछे से आवाज़ सुनायी दी :

"सुनिए!"

मैं पलटा। वह वहीं खड़ा था और मुझे देख रहा था।

"क्या यूरोप में आपके पास ज़रूरत से ज़्यादा राजा हैं?" उसने धीरे-धीरे पूछा।

"अगर आप मेरी राय जानना चाहते हैं तो हमें उनमें से एक की भी ज़रूरत नहीं है।" मैंने जवाब दिया।

वह एक तरफ को गया और उसने वहीं थूक दिया।

"मैं अपने लिए दो-एक राजाओं को किराये पर रखने की सोच रहा हूँ," वह बोला। "आप क्या सोचते हैं?"

"लेकिन किसलिए?"

"बड़ा मज़ेदार रहेगा। मैं उन्हें आदेश दूँगा कि वे यहाँ पर मुक्केबाज़ी करके दिखाएँ..."

उसने लॉन की तरफ इशारा किया और पूछताछ के लहजे में बोला :

"हर रोज एक से डेढ़ बजे तक। कैसा रहेगा? दोपहर के खाने के बाद कुछ देर कला के साथ समय बिताना अच्छा रहेगा... बहुत ही बढ़िया।"

वह ईमानदारी से बोल रहा था और मुझे लगा कि अपनी इच्छा पूरी करने के लिए वह कुछ भी कर सकता है।

"लेकिन इस काम के लिए राजा ही क्यों?"

"क्योंकि आज तक किसी ने इस बारे में नहीं सोचा" उसने समझाया।

"लेकिन राजाओं को तो खुद दूसरों को आदेश देने की आदत पड़ी होती है" इतना कहकर मैं चल दिया।

"सुनिए तो," उसने मुझे फिर से पुकारा।

मैं फिर से ठहरा। अपनी जेबों में हाथ डाले वह अब भी वहीं खड़ा था। उसके चेहरे पर किसी स्वप्न का भाव था।

उसने अपने होंठों को हिलाया जैसे कुछ चबा रहा हो और धीमे से बोला :

"तीन महीने के लिए दो राजाओं को एक से डेढ़ बजे तक मुक्केबाज़ी करवाने में कितना खर्च आयेगा आपके विचार से?"

●

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर : आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि : दिनांक 20 प्रत्येक माह

योजना आयोग' की मौत पर मातम क्यों?

मोदी सरकार ने योजना आयोग की तेहरवीं कर दी है। जो लोग समझते हैं कि इस संस्था को "समाजवाद" के निर्माण के उद्देश्य से स्थापित किया गया या इससे किसी न किसी रूप में जनपक्षधर भूमिका की उम्मीद रखते हैं उनकी भोली आत्माएँ ऊँची आवाज़ में रुदन कर रही हैं। प्रिण्ट व इलेक्ट्रानिक मीडिया में इनके बयानों, लेखों, टिप्पणियों आदि से इनके दुख का अन्दाज़ा बख़ूबी लगाया जा सकता है। इनका कहना है कि अपनी सारी कमियों और गलतियों के बावजूद योजना आयोग ने भारतीय अर्थव्यवस्था को कुछ हद तक योजनाबद्ध करने और जनता को कुछ राहत पहुँचाने में ज़रूरी भूमिका निभायी है। इनका कहना है कि योजना आयोग पूरी तरह ख़त्म करने की बजाय इसकी कमियों को दूर करना चाहिए था, ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था को योजनाबद्ध ढंग से चलाया जा सकता और जनता के हितों के मुताबिक भारतीय अर्थव्यवस्था को दिशा दी जा सकती।

कुछ भोले लोगों का मानना है कि आज़ाद भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने सोवियत संघ से प्रभावित होकर, अपने समाजवादी झुकाव के कारण योजना आयोग का गठन किया था। लेकिन वास्तव में 1950 में योजना आयोग के गठन के पीछे का मकसद न तो समाजवाद का निर्माण करना था और न ही इसने कभी जनपक्षधर भूमिका अदा की है। इसके खात्मे से भारत के पूँजीपति वर्ग के लिए अप्रासंगिक हो चुकी एक संस्था का ही ख़ात्मा हुआ है।

सन् 1947 में ब्रिटिश साम्राज्यवाद से राजनीतिक आज़ादी हासिल होने के बाद भारत के पूँजीपति वर्ग के पास देश की अर्ध-समान्ती अर्थव्यवस्था का तेज़ी से पूँजीवादी रूपान्तरण करने के लिए पर्याप्त पूँजी नहीं थी। अगर यह पूँजी साम्राज्यवादी देशों से ली जाती तो नयी हासिल हुई आज़ादी खतरे में पड़ती थी। इसके लिए ज़रूरी था कि सरकार जनता के पैसे से धातुओं, कोयले, रसायन, रेलवे व सड़क यातायात, बिजली आदि भारी उद्योग खड़े करके बुनियादी ढाँचे का निर्माण करे। उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन निजी पूँजीपतियों के पास रहा। इस सरकारी और निजी क्षेत्र की मिली-जुली अर्थव्यवस्था को "मिश्रित अर्थव्यवस्था" का नाम दिया गया। यह ऐसा वक्त था जब विश्वभर में कम्युनिस्टों के नेतृत्व में मज़दूर वर्ग का आन्दोलन उभार पर था। रूस, चीन तथा पूर्वी यूरोप के कई देशों में मज़दूर वर्ग के राज अस्तित्व में आ चुके थे। भारत के पूँजीपति वर्ग को भी हर पल मज़दूर आन्दोलन का भय सता रहा था। ऐसी परिस्थिति में नेहरू के नेतृत्व में भारतीय पूँजीपति वर्ग ने जनता से "मिश्रित अर्थव्यवस्था" के ज़रिए समाजवादी व्यवस्था कायम करने का झूठा वायदा किया। "जनकल्याण" के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, भोजन, आदि में सरकारी निवेश करके कुछ सस्ती सहूलियतें उपलब्ध करवायी गयीं। ऐसा मेहनतकश लोगों की चिन्ता से नहीं बल्कि जोंकों की चिन्ता करते हुए जनता की क्रान्तिकारी आकांक्षाओं को ठण्डा करने के मकसद से किया गया था।

जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में सोवियत संघ की तर्ज पर पंचवर्षीय योजनाएँ शुरू करने का मकसद भी समाजवाद का निर्माण नहीं था बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था का निर्माण करना था। जनता को मूर्ख बनाने के लिए इसे समाजवाद कह दिया गया। पूँजीवादी व्यवस्था की योजनाबन्दी करने की कोशिशें असल में भारतीय हुक्मरानों की असफल कोशिशें थीं, क्योंकि ऐसा हो पाना सम्भव नहीं था। योजना आयोग के ज़रिए जो कुछ हद तक योजनाबन्दी हो भी पाई उसका फ़ायदा भी पूँजीपति वर्ग को ही हुआ। इस योजनाबन्दी का मकसद पूँजीपति के फायदे के लिए बुनियादी ढाँचे का निर्माण, उन्हें स्रोत-साधन उपलब्ध करवाने आदि था। जनता की हाड़तोड़ मेहनत से निर्मित सार्वजनिक क्षेत्र का वास्तविक फायदा पूँजीपति वर्ग को ही हो रहा था। यहाँ भी मज़दूर वर्ग की भारी लूट हो रही थी। आगे चलकर भारत का पूँजीपति वर्ग अपने पैरों पर खड़ा हो गया, इसने मज़बूती हासिल कर ली, तब नवउदारवाद के दौर में इस सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों को कौड़ियों के मोल देशी-विदेशी पूँजीपतियों को बेच भी दिया गया। इस तरह योजना आयोग का काम कभी भी जनकल्याणकारी योजनाएँ बनाना नहीं रहा।

भाकपा, माकपा जैसी नकली कम्युनिस्ट पार्टियों ने भी योजना आयोग भंग किये जाने का विरोध किया है। ऐसा करते हुए ये पार्टियाँ पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के योजनाबद्ध ढंग से संचालित हो सकने, इस व्यवस्था की राजकीय मशीनरी के जरिए मेहनतकश जनता का भला हो सकने के भ्रम ही पैदा करती हैं।

निजी मालिकाने पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन और वितरण की योजनाबन्दी समूचे रूप में हो ही नहीं सकती। पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन जनता की ज़रूरतों को केन्द्र में रखकर नहीं बल्कि मुनाफ़े को केन्द्र में रखकर होता है। पूँजीपतियों में अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाने के लिए अन्धी होड़ होती है। विभिन्न पूँजीपति यह कभी पता नहीं लगा पाते कि किस चीज़ का कितना उत्पादन किया जाए, कि पहले से (समाज में) कितना उत्पादन हो चुका है। होड़ के चलते वे साझे रूप में उत्पादन व वितरण की योजना नहीं बना सकते। इस समूची व्यवस्था का नतीजा अतिरिक्त उत्पादन के संकट में निकलता है। जनता की ज़रूरत की चीज़ें जिनमें पूँजीपतियों को मुनाफ़ा नज़र नहीं आता उनकी कमी पैदा हो जाती है। इसलिए पूँजीवादी अर्थव्यवस्था कभी भी योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था नहीं हो सकती।

भारत के हुक्मरान भारतीय अर्थव्यवस्था को योजनाबद्ध ढंग से संचालित कर पाने में बुरी तरह नाकाम हुए हैं। इनकी पंचवर्षीय योजनाओं की भयंकर दुर्गति हुई है। इनकी योजनाएँ भारतीय पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को आर्थिक संकटों से कभी भी बचा नहीं पायी हैं। मार्च 1950 योजना आयोग की स्थापना हुई थी। 1960 के दशक में योजनाबन्दी का रेत का किला ढह चुका था। आगे चलकर राजीव गाँधी ने योजना आयोग को "जोकरों का झुण्ड" कहा था। 1990 के दशक की शुरुआत के साथ, जब से पूँजीपति वर्ग की ज़रूरत के मुताबिक सार्वजनिक क्षेत्र का ख़ात्मा किया जाने लगा, तब से तो खासतौर पर योजना आयोग सरकार और पूँजीपति वर्ग पर बोझ बनकर रह गया था। अब भारतीय हुक्मरान "समाजवाद" का नकाब उतार चुके हैं। ऐसी हालत में योजना आयोग को ख़त्म करने की तैयारियाँ तो भारतीय हुक्मरान लम्बे समय से कर रहे हैं। कांग्रेस के नेतृत्व वाली यू.पी.ए.-2 सरकार में सड़क परिवहन मंत्री कमलनाथ ने योजना आयोग की "आराम कुर्सी वाले सलाहकार" कह कर निन्दा की थी। मोदी सरकार ने तो बस भारतीय पूँजीपति वर्ग की योजना आयोग को ख़त्म करने की कोशिशों को अंजाम तक पहुँचाया है।

दूसरी ओर समाजवादी व्यवस्था में उत्पादन के साधनों का मालिकाना मुख्यतया सामाजिक होता है। उत्पादन का मकसद जनता की ज़रूरतें पूरा करना होता है। इस व्यवस्था में उत्पादन व वितरण सम्बन्धी योजनाबन्दी सम्भव होती है। इसलिए समाजवादी अर्थव्यवस्था ही योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था हो सकती है। सोवियत संघ, चीन आदि देशों में समाजवादी व्यवस्था के दौर में अर्थव्यवस्था की योजनाबन्दी करने में भारी कामयाबी हासिल हुई थी।

प्रथम विश्व युद्ध, विदेशी हमलों व गृह युद्ध में वर्षों तक उलझे रहने के बेहद कठिन दौर से गुज़रने के बाद सोवियत संघ में 1928 में पहली पंचवर्षीय योजना बनायी गयी थी (इसका अर्थ यह नहीं है कि इससे पहले योजनाबन्दी नहीं हो रही थी)। पहली पंचवर्षीय योजना 4 वर्ष 3 महीनों में पूरी कर दी गई। इसके बड़े नतीजे सामने आये थे। सोवियत संघ कृषि प्रधान देश से औद्योगिक देश बन चुका था। औद्योगिक उत्पादन कुल उत्पादन का 70 प्रतिशत हो चुका था और समाजवादी आर्थिक व्यवस्था औद्योगिक क्षेत्र में एकमात्र व्यवस्था बन चुकी थी। वर्ग के तौर पर कुलकों (पूँजीपति फार्मर) को कृषि क्षेत्र से बाहर कर दिया गया था। कृषि क्षेत्र में समाजवादी व्यवस्था मुख्य व्यवस्था बन चुकी थी। गाँवों में ग़रीबी और कमी दूर हो चुकी थी और ग़रीब किसान रोज़ी-रोटी की चिन्ता से मुक्ति के स्तर तक पहुँच चुके थे। औद्योगिक क्षेत्र में बेरोज़गारी का पूर्ण ख़ात्मा हो चुका था। उद्योगों की कुछ शाखाओं में ही आठ घण्टे का कार्यदिवस लागू था, अधिकतर जगह पर सात घण्टे का कार्यदिवस लागू था। सेहत के लिए हानिकारक कामों में छः घण्टे का कार्यदिवस लागू हो गया था। यह पहली पंचवर्षीय योजना के नतीजे थे। इससे आगे भी सोवियत संघ में योजनाबद्ध समाजवादी अर्थव्यवस्था के जरिए जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए जिस स्तर की तरक्की हासिल की गयी वो किसी करिश्मे की तरह था। 1930 के दशक में जब पूरा पूँजीवादी जगत आर्थिक महामन्दी की चपेट में था और लोगों की भयंकर तबाही हो रही थी उस समय सोवियत संघ में विकास के सारे रिकार्ड तोड़े जा रहे थे। चीन व अन्य समाजवादी देशों में भी योजनाबन्दी ने बड़ी सफलताएँ हासिल की थीं।

निचोड़ यह है कि योजना आयोग के ख़ात्मे से भारत की मेहनतकश जनता ने कुछ नहीं गँवाया। यह भारत के पूँजीवादी हुक्मरानों ने अपनी ज़रूरत से बनाया था और अपनी ही ज़रूरत के लिए इसे ख़त्म किया है। इसके ख़ात्मे से न तो कोई नुकसान होने लगा है न ही जनकल्याण होने वाला है (जैसा कि मोदी का दावा है)। पूँजीपतियों के मुनाफ़ों की गारण्टी करने के लिए, देश की मेहनतकश जनता और प्राकृतिक स्रोत-संसाधनों की लूट के लिए भारतीय हुक्मरान पहले भी योजनाएँ बनाते रहे हैं और आगे भी बनाते रहेंगे। योजना आयोग के होने या न होने से इसमें कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। पूँजीवादी व्यवस्था को आर्थिक संकट से बचाने के लिए हुक्मरान पहले भी योजनाबन्दी की नाकाम कोशिशें करते रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे। यह योजनाबन्दी पहले 'बन्द अर्थव्यवस्था' के रूप में हो रही थी अब 'उदारवाद' के रूप में हो रही है। न तो 'बन्द अर्थव्यवस्था' ही इन्हें आर्थिक संकट से मुक्ति दिला पायी और न ही 'उदारवाद' इनकी कोई मदद करेगा।

इसलिए योजना आयोग के ख़ात्मे पर रोना-पीटना, चीखना-चिल्लाना भोलापन या जनता में भ्रम फैलाने की कोशिशें ही कहा जा सकता है। जनता के लिए यह भोलापन और भ्रम फैलाने की कोशिशें दोनों ही ख़तरनाक हैं, जिनसे बचना चाहिए। जनता की समस्याओं का हल इस पूँजीवादी व्यवस्था को योजनाबद्ध ढंग से संचालित करने की कोशिशों में नहीं बल्कि समाजवादी व्यवस्था की स्थापना में हैं।

– लखविन्दर

साम्प्रदायिक जुनून का मुकाबला करते हुए शहीद होने वाले महान क्रान्तिकारी पत्रकार

गणेश शंकर विद्यार्थी

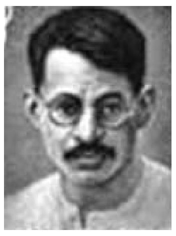

के जन्मदिवस (26 अक्टूबर) के अवसर पर

– देश की स्वाधीनता के लिए जो उद्योग किया जा रहा था, उसका वह दिन निस्सन्देह, अत्यन्त बुरा था, जिस दिन स्वाधीनता के क्षेत्र में ख़िलाफ़त, मुल्ला, मौलवियों और धर्माचार्यों को स्थान देना आवश्यक समझा गया। एक प्रकार से उस दिन हमने स्वाधीनता के क्षेत्र में एक कदम पीछे हटकर रखा था। हमें अपने उसी पाप का फल भोगना पड़ रहा है। देश की स्वाधीनता के संग्राम ही ने मौलाना अब्दुल बारी और शंकराचार्य को देश के सामने दूसरे रूप में पेश कर उन्हें अधिक शक्तिशाली बना दिया और हमारे इस काम का फल यह हुआ कि इस समय हमारे हाथों ही से बढ़ायी इनकी और इनके जैसे लोगों की शक्तियाँ हमारी जड़ उखाड़ने और देश में मजहबी पागलपन, प्रपंच और उत्पात का राज्य स्थापित कर रही हैं।

– हमारे देश में धर्म के नाम पर कुछ इने-गिने आदमी अपने हीन स्वार्थों की सिद्धि के लिए लोगों को लड़ाते-भिड़ाते हैं। धर्म और ईमान के नाम पर किये जाने वाले इस भीषण व्यापार को रोकने के लिए साहस और दृढ़ता के साथ उद्योग होना चाहिए।

– एक तरफ जहाँ जन आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन हुए, वहीं, उनके साथ-साथ जातिगत और साम्प्रदायिक आन्दोलनों को भी जान-बूझकर शुरू किया गया क्योंकि ये आन्दोलन न तो अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ थे, न किसी वर्ग के, बल्कि ये दूसरी जातियों के ख़िलाफ़ थे।

– लेनिन के अधूरे ग्रन्थ के पन्ने रूस में ही नहीं, सर्वत्र लिखे जा रहे हैं। विप्लव होंगे, परिवर्तन की धाराएँ घूमेंगी, पुराने आतताईपन पर गाज गिरेगी।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006